प्रकाशक :—
महावीर प्रसाद खरे,
गणेश पब्लिशिंग हाउस,
गणेश भवन, अहियापुर इलाहाबाद।

प्रथम संस्करण २०००
द्वितीय संस्करण १०००
तृतीय संस्करण ३०००
मूल्य २॥)

मुद्रक :—
गोविन्द लाल दास,
राधा गोविन्द प्रेस,

FOREWORD

It is a great pleasure in publishing the book Sangeet Shastra in two parts for the benefit of the students of Indian Music (for whom it is primarily intended) and the lovers of Indian Music in general.

SANGEET SHASTRA Part I deals with the vocal music and is meant for High School or equivalent standard.

SANGEET SHASTRA Part II deals with the vocal as well as Instrumental music and is meant for Intermediate and B.A. standard. This part specially deals with sitar, Violin, Esraj and Tabla. It is necessary for a candidate of B. A. to read both the parts.

It bears evidence of considerable learning in Vocal as well as Instrumental Music. This is written in a facile, lucid and graceful style and everyone can accept the invitation of this book with confidence. It offers an easy approach to music in everyone's language in Hindi

It brings together a mass of material scattered over several volumes and pays

special attention to the courses of U. P. High School and Intermediate Board, Universities and various other Institutions.

The book is a scientific study of the fine art of Music. Each and every aspect of Indian Music has been examined, scrutinised, surveyed, evaluated and given its relative importance. Musical sounds, notes, chords, their varieties and scales, old and new, their mutual relations, tunes, ragas and raginis, tals and rhythm and boles of tabla have all been carefully and minutely dealt with. In short, it offers practical and detailed information on all the subjects of Indian Music, many important ones of which are usually overlooked or underdeveloped in the popular literature of Indian Music.

It is fervently hoped that this authentic book will prove to be a substantial help to music-lovers, students of Indian Music and experts in broadening the scope of Indian Music.

Allahabad ;
July, 1952.

Publisher

PREFACE TO THIRD EDITION

Since the first publication, the set of Sangeet Shastra in two parts has been highly spoken of and well recognised by the teachers and students alike of almost all the institutions of the Uttar Pradesh and beyond where one or both parts of this set has or have been prescribed as text books.

I feel myself grateful that my publication of this set has amply proved helpful to the readers in general and the students in particular.

The increasing demand of this set, compelled the Publisher to bring out a second and even a third edition in quick succession without revising the text.

Any good suggestions made by the readers in revising and remodelling this set, will be cordially entertained and honoured.

Allahabad,
Dated September 22, 1954.

M. P. Khare,
Publisher.

—: प्राक्कथन :—

"संगीत शास्त्र" भाग १ में यह सूचित किया गया था कि "संगीत शास्त्र" के द्वितीय भाग में इन्टरमीजियेट और तृतीय भाग में बी० ए० की परीक्षाओं का शास्त्र दिया जायगा, किंतु सुविधा के ध्यान से द्वितीय और तृतीय भाग को पृथक न रख कर एक ही द्वितीय भाग की पुस्तक में इन्टरमीजियेट तथा बी० का पूर्ण शास्त्र विवरण दे दिया गया है। संगीत शास्त्र का यह द्वितीय भाग संगीत के विद्यार्थियों की बहुत दिनों की माँग पूरी कर सकेगा क्योंकि यह पहली पुस्तक है जिसमें बा० ए० की परीक्षा तक का प्रत्येक विषय पूर्णत समझाया गया है और यह मैरिस कालेज, लखनऊ तथा प्रयाग संगीत समिति के पचम वर्ष तक के लिए भी पूर्णतः पर्य्याप्त है। इसमें चतुर्थ अध्याय वाद्यों का दिया है जिसमें तानपुरा, तबला, सितार, बेला और इसराज वाद्यों का पूरा शास्त्र उनके चित्रों सहित दिया गया है। आवश्यक विज्ञान सम्बन्धी विषय, लयकारी का विस्तृत प्रकरण और भारतीय संगीत के विकास का एक स्पष्ट तथा सुन्दर इतिहास, इस पुस्तक की कुछ विशेषतायें हैं। आविर्भाव-तिरोभाव और विवादी-प्रयोग आदि विषयों का स्पष्टीकरण उदाहरणों के साथ किया गया है। प्राचीन गमकों के सभी प्रकारों का यथा सम्भव वर्णन तथा उनका किस रूप में आज व्यवहार होता है, इसका भी उल्लेख किया है। तबले के विभिन्न विषयों तथा पारिभाषिक शब्दों की स्पष्ट व्याख्या कदाचित प्रथम बार इस पुस्तक में मिलेगी।

संगीत का अध्ययन करने वाले ऊँची कक्षाओं के विद्यार्थियों

एवं अध्यापकों को संगीत सम्बन्धी सभी विषयों के अंतर्गत एक सूक्ष्म दृष्टि डालने में यह पुस्तक सहायक अवश्य सिद्ध होगी। अनेक विषयों के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद समाया हुआ है। अतः लेखक ने यथा सम्भव सभी मत देकर आवश्यकतानुसार अपना विचार भी प्रकट किया है जिससे आगे की खोज सम्भव हो सके।

हाई स्कूल के विद्यार्थियों को इस भाग से वाद्य के प्रकरण का अध्ययन करना चाहिये और इन्टरमीजियेट तथा बी० ए० के विद्यार्थियों को संगीत शास्त्र भाग १ और २ दोनों का अध्ययन करना चाहिये जिससे भाग २ के कुछ नवीन विषयों को वे सरलता और पूर्णता के साथ हृदयगम कर सकें।

इस पुस्तक मे तबला सम्बन्धी अध्याय लिखने मे समिति के तबला प्रोफेसर श्री लाल जी की सहायता मिली है अतएव मैं उनका बहुत आभारी हूँ। विद्यार्थियों की आवश्यकता के कारण मुझे इस पुस्तक को अत्यत शीघ्रता के साथ प्रकाशित कराना पडा है, इसलिये यदि कहीं विषय प्रतिपादन में कोई कमी रह गई हो तो पाठक क्षमा करें।

१४, कारथवेट रोड
२१ मार्च १६५०

लेखक

विषय-सूची

प्रथम अध्याय (स्वर राग)

विषय.—	पृष्ठ संख्या :—
(१) आंदोलन संख्या और तार की लम्बाई—	१
(२) स्वरों का गुणान्तर—	१
(३) आंदोलन संख्या द्वारा लम्बाई निकालना—	३
(४) लम्बाई द्वारा आंदोलन संख्या निकालना—	४
(५) मध्यकाल के स्वर स्थान—	५-१०
(६) श्री निवास के स्वरों की तार की लम्बाइयाँ—	१०-११
(७) मंजरीकार के स्वर—	१२
(८) मध्यकालीन, आधुनिक वा पश्चात्य स्वर-तुलना	१३
(९) प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक श्रुति-स्वर-विभाजन—	१४-१७
(१०) कर्नाटक और हिन्दुस्तानी स्वर तुलना—	१७ १८
(११) व्यंकटमखी ७२ थाट—	१६-२३
(१२) व्यंकटमखी के ४८४ राग—	२ -२६
(१३) स्वर और समय की दृष्टि से राग के तीन वर्ग (संधिप्रकाश राग आदि)—	२७-३०
(१४) समय चक्र—	३ -३१
(१५) अध्वदर्शक स्वर—	३२-३३

द्वितीय अध्याय (लय ताल)

(१) लयकारी का नामकरण—	३४-३७
(२) दुगुन, तिगुन, चौगुन, आड़ आदि—	३५-३७
(३) पौन गुन और आड (सवागुन —	३६
(४) विविध लयकारियों को लिखने की विधि—	३७-३८

(५) ताल के ठेकों की दुगुन आदि लिखने की विधि— ३६-४२
(६) गणित द्वारा गीतों की दुगुनादि के प्रारम्भिक स्थान निकालना— ४३-४६
(७) गीतों की दुगुनादि को स्वर-ताल लिपि में लिखना ४७-४८
(८) कुछ कठिन ताल, (झुमरा, आडाचारताल, गजझम्पा, मत्त ताल शिखर ताल, रूपक विलम्बित, सूलफाक और पचम सवारी)— ४८-५०

तृतीय अध्याय (गीत-गायकी)

(१) गमक के प्रकार— ५२ ५६
(२) कंपित गमक— ५२
(३) स्फुरित गमक (जमजमा मुर्का, गिटकिड़) ५२-५३
(४) आहत गमक— ५४
(५) आंदोलित, प्लावित मींड — ५४-५५
(६) उल्लासित, तिरिप वली गमक— ५५
(७) उठाव और चलन— ५६-५७
(८) स्थाय — ५७
(९) मुखचालन, आक्षिप्तिका विदारी— ५८
(१०) परमेल प्रवेशक राग— ५८-५९
(११) प्राचीन निबद्ध-अनिबद्ध गान— ५९
(१२) सन्यास-विन्यास— ६०
(१३) अल्पत्व बहुत्व— ६०-६१
(१४) जाति-लक्षण— ६१ ६२
(१५) ग्राम— ६२-६४
(१६) मूर्छना— ६४-६५
(१७) आविर्भाव तिरोभाव— ६५-६८

(१८) आधुनिक अनिबद्ध गान (आलाप गायन नोमतोम्) — ६८-७३
(१९) आधुनिक निबद्ध गान — ७३-७६
(२०) ध्रुपद-धमार— ७३-७४
(२१) ख्याल (तानों के प्रकार. दानेदार तानें. फिरत की तानें आदि। ७४-७८
(२२) टप्पा और ठुमरी— ७८-७९
(२३) पंडित— ७९
(२४) वाग्गेयकार— ७९-८०
(२५) नायकी, गायकी— ८०-८१
(२६) गायकों के गुण-अवगुण — ८१-८३
(२७) विवादी-स्वर का प्रयोग— ८३-८५

चतुर्थ अध्याय (वाद्य)

सितार :—

(१) वाद्य-प्रकार (तत्, सुषिर, अवनद्ध, घन) — ८६-८७
(२) तम्बुरा वर्णन— ८८-९०
(३) सितार—इतिहास — ८८-९०
(४) सितार—अंग वर्णन — ९०-९२
(५) सितार—तार मिलाना — ९२-९४
(६) सितार सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द (चल-अचल ठाट, बोल आकर्ष-अपकर्ष, गत बाज, झाला, मींडें, गमक, आलाप, जोड़ आदि — ९४-९५
(७) गतों की तीन प्रकार— ९४-१०३
(८) बाज (दिल्ली या पूरब)— ९७
(९) मींड (अनुलोम विलोम), घसीट, लाग डाट— ९८-१००

(१०) कृन्तन— १०१
(११) गमक— १०२
(१२) आलाप-जोड़— १०२-१०३

वेला :—

(१) वेला परिचय— १०३-१०४
(२) वेला (गायन और गत शैलियाँ) १०४-१०५
(३) वेला (अंग वर्णन)— १०५-१०७
(४) वेला (तार मिलाना)— १०७
इसराज— १०७-१०८

तबला :—

(१) परिचय और इतिहास— १०९-११०
(२) तबले के अंग — ११०-१११
(३) तबला मिलाना — ११२
(४) तबले के थाज — ११३-११५
(५) ताल और उसके दस प्राण — ११५-११७
(६) ग्रह—सम, विषम, अतीत, अनागत — ११७-११८
(७) जातियाँ (चतस्र आदि)— ११८-११९
(८) तबले के दस वर्ण— ११९ १२०
(९) तबले के पारिभाषिक शब्द — १२०
(१०) ठेका, आवृत्ति— १२०-१२१
(११) साथ — १२१
(१२) किस्म टुकड़ा — १२२
(१३) तीहा (बेदम, दमदार)— १२३
(१४) मुखड़ा, मोहरा— १२४-१२५
(१५) उठान — १२५-१२६

(१६) परनें— १२६-१२७

(१७) गत, कायदा — १२७-१२८

(१८) पलटा— १२८-१२६

(१९) रेला— १२६-१३०

(२०) लग्गी, धाट, लड़ी— १३०-१३२

(२१) चक्करदार टुकड़ा पेशकारा— १३२-१३४

(२२) कठिन तालों के ठेके (टप्पा, अद्धा,— १३४-१४०
फरोदस्त, ब्रह्म, परतो, सवारी १६ मात्रा,
सरस्वती, रुद्र, कुम्भ, लक्ष्मी, छोटी सवारी
१५ मात्रा, ३० मात्रा, गेमटा।

परिशिष्ट (१) कर्नाटक ताल पद्धति— १४१-१४३

परिशिष्ट (२) कर्नाटक और हिंदुस्तानी राग १४३-१४४

परिशिष्ट (३) राग-रागिनी पद्धति— १४४-१४७

परिशिष्ट (४) स्वरलिपियों (विष्णुदिगंबर
और भातखंडे पद्धति) १४७-१५३

परिशिष्ट (५) संगीत का क्रमिक इतिहास १५४-१८८

भाग २

प्रथम अध्याय

आन्दोलन संख्या और तार की लम्बाई

जब हम सितार अथवा तानपुरे के खिंचे हुए तार को छेड़ते अथवा बजाते हैं, तब तार आंदोलन करता है, जिस से नाद उत्पन्न होता है। हम यह देख चुके हैं कि आंदोलनों की चौड़ाई जितनी अधिक होती है, उतना ही नाद बड़ा होता है और वह जितनी कम होती है, नाद उतना ही छोटा होता है। उसी प्रकार हम देख चुके हैं कि नाद की आंदोलन संख्या जितनी अधिक होती है, वह उतना ही ऊँचा होता है और वह जितनी कम होती है, उतना ही वह नीचा कहलाता है।

तार की लम्बाई पर भी नाद की ऊँचाई-नीचाई निर्भर है। तार की लंबाई कम होने से ऊँचा नाद और तार की लंबाई अधिक होने से नीचा नाद निकलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तार की लम्बाई और नाद की आंदोलन संख्या का संबंध उलटा है। लंबाई के घटने से नाद ऊँचा होगा और उसकी आंदोलन संख्या बढ़ेगी और लंबाई के बढ़ने से नाद नीचा और उसकी आंदोलन संख्या कम हो जायगी।

स्वरों का गुणांतर

दो स्वरों की आंदोलन संख्याओं के भजनफल को उनका गुणांतर अथवा स्वरांतर कहते हैं। उदाहरणार्थ, वादी षड्ज स्वर की

आंदोलन-संख्या २४० मान ली जाय (अर्थात् षड्ज स्वर उत्पन्न करने वाला तार एक सेकंड में २४० आंदोलन करता हो) और पंचम स्वर की आंदोलन-संख्या ३६० हो, तो षड्ज और पंचम का स्वरांतर अथवा गुणांतर उनमें से बड़ी संख्या को छोटी से भाग देकर निकलेगा, अर्थात् सा—प का गुणांतर होगा $\frac{360}{240} = \frac{3}{2}$ इसी प्रकार यदि षड्ज की आंदोलन संख्या ४८० को मध्य षड्ज की आंदोलन-संख्या २४० से भाग दें, तो तार षड्ज का गुणांतर $\frac{480}{240} = \frac{2}{1}$ निकल आता है। $\frac{2}{1}$ गुणांतर का अर्थ है दुगुना ऊँचा अर्थात् तार षड्ज की ऊँचाई मध्य षड्ज से दुगुनी है। पंचम का गुणांतर $\frac{3}{2}$ अर्थात् १½ है जिसका अर्थ हुआ कि पंचम की ऊँचाई षड्ज से डेढ़गुनी है।

जिस प्रकार दो स्वरों की आंदोलन-संख्याओं को भाग देने से उनका गुणांतर निकलता है, उसी प्रकार उन दो स्वरों को उत्पन्न करने वाले तारों की लंबाइयों को भी आपस में भाग देने से वही गुणांतर निकल आता है, चूँकि लंबाई और आंदोलन का उलटा सम्बन्ध है, इसीलिए लंबाइयों से गुणांतर निकालते समय षड्ज की लंबाई को अन्य स्वरों की लंबाइयों से भाग देंगे अर्थात् ऊपर सदा षड्ज की लंबाई रहेगी और नीचे उस स्वर की लंबाई लिखेंगे, जिसका गुणांतर निकालना होगा। यदि षड्ज के तार की लंबाई ३६ इंच मान लें (अर्थात् ३६ इञ्च लम्बे तार को छोड़ने से जो स्वर निकले, षड्ज स्वर स्वीकार करें) और पंचम स्वर की लम्बाई २४ इञ्च हो, तो पंचम का गुणांतर होगा $= \frac{36}{24} = \frac{3}{2}$। इसी प्रकार तार षड्ज की लम्बाई (अर्थात् तार षड्ज उत्पन्न करने वाले तार की लम्बाई) १८ इञ्च है। अतः उसका गुणांतर होगा $= \frac{36}{18} = \frac{2}{1}$। जब किसी स्वर का गुणांतर कहा जाता है तो यह मान लेते हैं कि वह गुणांतर षड्ज के साथ है अर्थात् यदि हम कहें कि मध्यम स्वर

षड्ज स्थित है, इसका अर्थ यह हुआ कि घुड़च से १८ इंच पर तार सा का पड़दा बाँधा, क्योंकि ३६ का आधा १८ होता है।

(२) फिर श्री निवास ने मेरु और तार सा के मध्य में मध्यम का पड़दा रक्खा, अर्थात् मेरु और तार सा के बीच के १८ इञ्च के दो विभाग ६,६ इञ्च के हुए इसलिए मध्यम का पड़दा घुड़च से १८+६=२७ इञ्च पर बँधा।

नीचे दिये हुए चित्र से मेरु और घुड़च के बीच के तार पर तार षड्ज और मध्य स्वरों के स्थान स्पष्ट हो जायँगे :—

```
मध्य                       तार
सा = ३६ इञ्च               सा = १८"
o------------|-------------|----------------------o
मेरु         मध्यम                              घुड़च
             = २७"
<-------------- पूरा तार = ३६" -------------------->
```
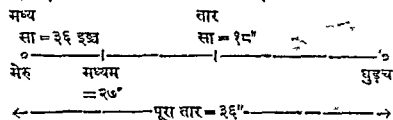
(३) इसके बाद पंचम स्वर की स्थापना श्री निवास इस प्रकार बतलाता है कि मेरु और तार सा के मध्य के भाग को तीन बराबर भागों में बाँट कर मेरु से दूसरे भाग पर पंचम स्वर का पड़दा बाँधा जाय, अर्थात् मेरु और तार सा के मध्य का भाग है १८ इञ्च का। इसके तीन बराबर भाग हुए ६,६ इञ्च के। इनमें से दूसरे भाग के अंत में अर्थात् मेरु से १२ इञ्च पर या तार सा से ६"पर पंचम स्वर रक्खा गया। अर्थात् पंचम की लंबाई घुड़च से १८+६ =२४ इञ्च हुई। (प्रत्येक स्वर की लंबाई घुड़च से ही नापनी चाहिये क्योंकि मिजराब घुड़च के पास ही बजता है और स्वरों के पड़दों पर अंगुली रखने से उस पड़दे और घुड़च के बीच का तार गूँजता है। जितना तार गूँजे, उसी की लंबाई नापनी चाहिये।)

पंचम के पड़दे का स्थान इस प्रकार होगा :

अधिकतर मध्य षड्ज की लंबाई ३६ इंच और उसकी आंदोलन-संख्या २४० मान ली जाती है (हम कुछ भी मान सकते हैं, परन्तु सुविधा के लिये और हिसाब लगाने के लिए कुछ मानना अवश्य पड़ता है), अतः यदि हम किसी स्वर की आंदोलन संख्या दे दें, तो उसकी लंबाई निकालने के लिए षड्ज स्वर की संख्या २४० और लम्बाई ३६" की सहायता लेनी होगी।

प्रश्न :—उस स्वर की लंबाई निकालो, जिसकी आंदोलन संख्या ३०० है।

उत्तर :—षड्ज की लंबाई मानी जाती है ३६ इंच
षड्ज की आंदोलन संख्या मानी जाती है २४०

इसलिए जिस स्वर की लंबाई निकालनी है, उसका गुणांतर
$= \frac{३००}{२४०} = \frac{५}{४}$

इसलिए उसकी लंबाई = षड्ज की लंबाई ÷ $\frac{५}{४}$
$= ३६ \div \frac{५}{४}$
$= ३६ \times \frac{४}{५} = २८\frac{४}{५}$ इंच

तार की लम्बाई से आन्दोलन संख्या निकालना।

यदि दो स्वरों की लंबाइयाँ और उनमें से नीचे वाले की आंदोलन संख्या दी हो, तो दूसरे स्वर की आंदोलन-संख्या निकालने के लिए भी, पहले उसका गुणांतर निकाला जायगा, फिर इस गुणांतर से दिये हुए स्वर की आंदोलन संख्या को गुणा करके, दूसरे स्वर की आंदोलन संख्या आ जायगी। उदाहरणार्थ,

प्रश्न :—यदि निषाद स्वर की लंबाई १९$\frac{१}{५}$ इंच हो, तो उसकी आंदोलन संख्या क्या होगी ?

उत्तर :—सा की लंबाई = ३६" और
सा की आंदोलन संख्या २४०

∴ निषाद का गुणांतर $= \frac{३६}{१९\frac{१}{५}} = \frac{३६}{\frac{९६}{५}} = \frac{३६ \times ५}{९६} = \frac{१५}{८}$

∴ निषाद की आंदोलन संख्या $= २४० \times \frac{१५}{८} = ४५०$

नोट :—यदि किसी स्वर का गुणांतर दिया हो तो षड्ज की आंदोलन संख्या २४० को उससे गुणा करके उस स्वर की आंदोलन संख्या निकल आती है।)

मध्यकाल के स्वर-स्थान

संगीत के इतिहास का मध्यकाल मुख्यतया १४वीं शताब्दी से १८वीं शताब्दी तक माना जाता है, जिसके बीच में तीन-चार मुख्य संगीत शास्त्र के संस्कृत ग्रंथ लिखे गए, इनमें से मुख्य ग्रंथ 'संगीत पारिजात' है जिसे पंडित अहोबल ने लिखा था, इसमें सर्व प्रथम बारहों शुद्ध और विकृत स्वरों के स्थान, वीणा के तार की लंबाइयों की सहायता से निश्चित करके दिये गये हैं। उसके बाद श्री निवास पंडित ने भी अपने ग्रंथ 'राग तत्वविबोध' में बारह स्वरों के स्थान ठीक अहोबल के ढंग पर दिये हैं। श्री निवास का वर्णन स्पष्ट होने से, उसी के अनुसार मध्य कालीन शुद्ध और विकृत-स्वरों के ठीक-ठीक स्थान, वीणा के तार की लम्बाइयों द्वारा नीचे बताये जाते हैं।

श्री निवास ने सर्व-प्रथम यह मान लिया कि वीणा का पूरा खुला तार ३६ इंच लम्बा है और उससे षड्ज स्वर निकलता है। इसके उपरांत वह बारी-बारी बारहों स्वरों के पर्दों को बाँधने का ढंग बताता है, जिससे हम उनकी लम्बाइयाँ, निकाल सकते हैं :—

(१) श्री निवास कहता है कि मेरु और घुड़च (अर्थात् वीणा या सितार के दो छोर, अटक और ब्रिज) के बीचो बीच में तार

का गुणांतर $\frac{३}{४}$ है, तो इसका अर्थ होगा कि 'मध्यम का षड्ज के साथ गुणांतर अथवा षड्ज-मध्यम का गुणांतर $\frac{४}{३}$ है। इसी प्रकार अन्य स्वरों के आपस का भी गुणांतर तार की लम्बाइयों अथवा आंदोलन-संख्याओं द्वारा निकाला जा सकता है। पंचम और तार षड्ज का गुणांतर होगा—

$$\frac{\text{तार षड्ज की आंदोलन संख्या ४८०}}{\text{पंचम की आन्दोलन संख्या ३६०}} = \frac{४}{३}$$

अथवा तार की लंबाइयों को भाग देकर भी, यह होगा :—

$\frac{\text{पंचम की लम्बाई}}{\text{तार सा की लम्बाई}} = \frac{२४}{१८} = \frac{४}{३}$ (लंबाइयों से गुणांतर निकालते समय सदा बड़ी लम्बाई ऊपर और छोटी लम्बाई नीचे लिखी जायगी। गुणांतर सदा १ से बड़ा होता है।)

आन्दोलन संख्या से लम्बाई निकालना

यदि दो स्वरों की आंदोलन संख्यायें दी हों तो उनकी लंबाइयाँ भी निकाली जा सकती हैं। यदि उनमें से एक स्वर की लंबाई दी हो, तो पहले गुणांतर निकाल कर फिर उस गुणांतर से, दिये हुये नीचे स्वर की लम्बाई को भाग देने से दूसरे स्वर की लम्बाई आ जायगी। उदाहरणार्थ, यदि षड्ज की लंबाई ३६ इंच हो और उसकी आंदोलन-संख्या २४० हो, तो यदि मध्यम स्वर की आंदोलन-संख्या ३२० ही हो, तो हम मध्यम की लंबाई गति से इस प्रकार निकालेंगे :—

$$\text{मध्यम का गुणांतर} = \frac{\text{मध्यम की आंदोलन संख्या}}{\text{षड्ज की आंदोलन संख्या}} = \frac{३२०}{२४०} = \frac{४}{३}$$

$\therefore$ मध्यम की लंबाई = षड्ज की लंबाई $\div \frac{४}{३}$

$= ३६ \times \frac{३}{४} = २७$ इंच।

सा = ३६"　　　　　　　　　　मा = १८"

०———।———।———।———————————०

मेरु　　ग = ३०"　प = २४"　　　　　　　घुड़च
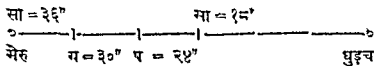
(४) मेरु और पचम के बीचोबीच गांधार की स्थापना हुई। अत: वह प से ६ इंच बाई ओर होगा। अर्थात् गांधार की लम्बाई हुई २४+६ = ३० इंच, घुड़च से।

(५) ऋषभ स्वर की स्थापना के लिए मेरु और पंचम के मध्य के भाग को तीन बराबर भागों में बाँटा गया और उनमें से मेरु से पहले भाग पर ऋषभ का पड़दा बाँधा गया, अर्थात् सा-प के मध्य भाग की लम्बाई है ३६-२४ = १२" इसके तीन बराबर-बराबर भाग, ४, ४ इंच के हुए और मेरु से ४" इच पर ऋषभ हुआ। घुड़च मे ऋषभ की लंबाई हुई ३६—४ = ३२ इंच। यथा :—

३"　　　　　　　　　　　२४"

०———।———————————०

सा　　रे = ३२"　　　　　　　प
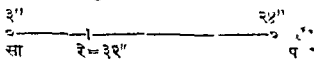
(६) धैवत के लिए श्री निवास ने लिखा है कि वह पंचम और तार षड्ज के मध्य में स्थित है। यहाँ पर "मध्य" का अर्थ "बीचों-बीच में" लगाना ठीक न होगा क्योंकि तब धैवत की लम्बाई घुड़च से २१ इंच निकलेगी जो ऋषभ की लबाई ३२ की डेढ़गुनी नहीं है। श्री निवास ने ग्रंथ में यह स्पष्ट लिखा है कि सप्तक भर मे षड्ज-पंचम भाव रहेगा अर्थात् जिस प्रकार पंचम, षड्ज से डेढ गुना ऊँचा है, उस प्रकार ऋषभ से डेढ़ गुना ऊँचा धैवत, गांधार का डेढ़ गुना निषाद और मध्यम का तार षड्ज। अर्थात् रे का पंचम ध, ग का पंचम नी और म का पचम तार सा इस प्रकार सा-प, रे-ध, ग-नी और म-मां ये जोड़ियाँ एक-सी षड्ज-पंचम भाव की हैं।

षड्ज और पंचम स्वरों का पारस्परिक सम्बन्ध, ऊंचे-नीचेपन के भाव से, षड्ज—पंचम भाव कहलाता है, जिसका गुणांतर ३/२ अथवा डेढ़ होता है। षड्ज की आंदोलन संख्या को १½ से गुणा करने से पंचम की आंदोलन संख्या निकल आती है, इसी प्रकार किन्हीं भी दो स्वरों का गुणांतर यदि ३/२ अथवा डेढ़ होगा, तो उनमें षड्ज-पंचम भाव माना जायगा।

अतः चूँकि ३२ का डेढ़ गुना २१ नहीं होता है इसलिए श्री निवास के धैवत स्वर को प और सां के ठीक बीच न मानकर, 'मध्य' का अर्थ 'क्षेत्र' मानेंगे और धैवत का स्थान, षड्ज-पंचम भाव के आधार पर ऋषभ की लंबाई को डेढ़ से भाग देकर निकालेंगे (क्योंकि आंदोलन संख्या डेढ़ गुनी होगी तो लंबाई डेढ़ से भाग देकर निकलेगी)

अतः धैवत की लंबाई = ऋषभ की लम्बाई ३२ — ३/२

= ३२ × २/३

= २१ १/३ इञ्च

नी = २०"

o————|————|————|————————o

प = २४" ध = २१ १/३" सां = १८"
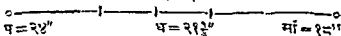
(७) इसी प्रकार निषाद का स्थान, प और सां के तीन बराबर भाग करके दूसरे पर माना है। प और सां के मध्य का भाग ६ इंच लम्बा है। उसके तीन भाग २, इंच के हुए, अतः निषाद की लम्बाई = १८ २ = २० ("पंचम के दूसरे भाग पर" का अर्थ है "षड्ज" के पहले भाग पर")।

शुद्ध स्वरों के उपरांत श्री निवास अपने पांच विकृत स्वरों के वीणा पर स्थान बताता है। उसके विकृतों में कोमल ऋषभ, कोमल धैवत तीव्रतर मध्यम, तीव्र गांधार और तीव्र निषाद हैं। गांधार

और निषाद के यह कोमल विकृत न मान कर तीव्र विकृत मानते हैं। विकृत स्वरों के स्थान उसने इस प्रकार स्थिर किए हैं :—

(१) कोमल ऋषभ :—सा और रे के मध्य के तार के तीन बराबर भाग कर के दूसरे पर कोमल रे स्थापित हुआ। सा और रे का अंतर है, ३६—३२ = ४ इञ्च। इसके तीन भाग $\frac{४}{३}$, $\frac{४}{३}$ इञ्च के हुए। अतः सा से दूसरा भाग अथवा रे से पहला भाग रे से $\frac{४}{३}$ इञ्च दूर हुआ अथवा कोमल ऋषभ की लंबाई घुड़च से हुई—रे की लम्बाई + $\frac{४}{३}$ = ३२ + $\frac{४}{३}$ = ३३$\frac{१}{३}$ इञ्च।

|———|———|——.————|

सा = ३६"   रे = ३३$\frac{१}{३}$" रे = ३२"

(२) कोमल धैवत की लम्बाई, कोमल ऋषभ की लम्बाई से डेढ़गुनी कम अर्थात् ३३$\frac{१}{३}$ ÷ $\frac{३}{२}$

$$= \frac{१००}{३} \times \frac{२}{३} = २२\frac{२}{९}$$ इञ्च होगी,

अर्थात् जिस प्रकार षड्ज-पंचम भाव द्वारा शुद्ध धैवत की लम्बाई शुद्ध ऋषभ की सहायता से निकाली गई थी, उसी प्रकार कोमल ऋषभ की सहायता से उसके पंचम, कोमल धैवत की लंबाई निकाली गई।

(३) तीव्र गांधार का स्थान मेरु (अर्थात् मध्य सा) और धैवत के बीच में। मेरु और ध का अंतर = ३६ − २१$\frac{१}{३}$ = १४$\frac{२}{३}$ = $\frac{४४}{३}$ इञ्च। इसका आधा = $\frac{४४}{३ \times २}$ = $\frac{२२}{३}$ इञ्च इसलिए तीव्र गांधार की लम्बाई धैवत से $\frac{२२}{३}$ इञ्च अर्थात् घुड़च से २१$\frac{१}{३}$ + $\frac{२२}{३}$ = २१$\frac{१}{३}$ + ७$\frac{१}{३}$ = २८$\frac{२}{३}$ इञ्च हुई।

o——————|————————|

सा = ३६"   तीव्र ग = २८$\frac{२}{३}$"   ध = २१$\frac{१}{३}$"

(४) तीव्र निषाद का स्थान धैवत और तारषड्ज के मध्य के तीन भागों में से दूसरे भाग पर माना गया। अर्थात् तार सा वा ध का अंतर = २१⅓—१८ = ३⅓ = १०/३ इञ्च और इसके तीन भागों में से प्रत्येक = १०/९ इञ्च। इसलिए तीव्र निषाद की लंबाई घुड़च से १८ + २०/९ = १८ + १२/९ = १९⅘इञ्च होगी।

०————————|————|——————|

ध = २१⅓"   तीव्र नी = १९⅘" सां = १८"

(५) तीव्रतर मध्यम का स्थान तीव्र गांधार और तार षड्ज के मध्य के तीन भागों में से प्रथम भाग पर माना गया। तीव्र ग और तार सा का अंतर = २८⅓ − १८ = १०⅔ = ३२/३ इञ्च जिसके तीन बराबर भाग ३२/३ × ⅓ = ३२/९ इञ्च के होंगे। अतः तीव्रतर मध्यम घुड़च से १८ + ३२/९ + ३२/९ = १८ + ६४/९ = १८ + ७⅑ = २५⅑ इञ्च दूर होगा।

तीव्रतर म = २५⅑"

|————————|————————|————————|

तीव्र ग = २८⅓"   तार सा = १८"

इस प्रकार श्री निवास ने वीणा के तार की लम्बाइयों द्वारा अपने अथवा मध्यकाल में प्रचलित बारह स्वरों के स्थान बतलाये हैं, जिनकी तालिका नीचे दी जाती है :—

श्री निवास के शुद्ध स्वर :—

(लम्बाइयाँ)

(१) षड्ज = ३६ इञ्च। तार षड्ज = १८ इञ्च
(२) ऋषभ = ३२"
(३) गांधार = ३०"
(४) मध्यम = २७"
(५) पंचम = २४"
(६) धैवत = १⅔"   और (७) निषाद = २०"

श्री निवास के विकृत स्वरः—(लम्बाइयाँ)

(१) कोमल ऋषभ = ३३$\frac{१}{३}$ इन्च
(२) कोमल धैवत = २२$\frac{१}{२}$"
(३) तीव्रतर मध्यम = २५$\frac{१}{२}$"
(४) तीव्र गांधार = २८$\frac{४}{५}$"
(५) तीव्र निपाद = १९$\frac{१}{५}$"

यह हम पीछे देख चुके हैं कि तार की लम्बाइयों द्वारा स्वरों की आंदोलन संख्यायें भी निकाली जा सकती हैं। अतः श्रीनिवास के बारह स्वरों की आंदोलन संख्यायें भी निकाल ली गई हैं जिन्हें आगे चलकर एक सम्मिलित तालिका में दिया जायगा।

आधुनिक काल शुद्ध सप्तक परिवर्तित हो जाने के कारण स्वर्गीय पं० विष्णुनारायण भातखण्डे जी ने अपने ग्रंथ 'अभिनव-राग मंजरी' में श्री निवास के शुद्ध गंधार और शुद्ध निपाद की लम्बाइयों को आधुनिक कोमल गांधार और कोमल निपाद की लम्बाइयाँ स्वीकार कर ली हैं और श्री निवास के तीव्र गांधार और तीव्र निपाद के स्थान पर अपने शुद्ध गांधार और शुद्ध निपाद रक्खे हैं। इसका कारण यही है कि श्री निवास द्वारा दी गई लम्बाइयों के अनुसार सितार पर शुद्ध सप्तक बनाकर बजाने से स्पष्ट पता चलता है कि वह शुद्ध सप्तक हमारे आधुनिक काफी थाट के सदृश था अर्थात् मध्यकालीन शुद्ध ग, नी, आधुनिक कोमल ग, नी, के सदृश थे। इसलिए बिलावल शुद्ध सप्तक हो जाने के कारण श्री निवास के तीव्र ग, नी को अपने आधुनिक शुद्ध ग, नी स्वरों के समान मानना पड़ा। यह सप्तक का परिवर्तन मुसल्मानों द्वारा फारस तथा अरब के संगीत का प्रभाव पड़ने से हुआ।

भातखंडे जी ने भी बारहों आधुनिक स्वरों के स्थान वीणा पर तार की लंबाइयों द्वारा स्थिर किए हैं। उन्होंने श्री निवास की

प्रणाली अपनाई। मंजरी में, शुद्ध स्वरों की लम्बाइयाँ सब श्रीनिवास के अनुसार ही हैं। केवल मंजरी के शुद्ध ग, नी की लम्बाइयाँ वे ली गई हैं जो श्री निवास के तीव्र ग, नी की थीं।

मंजरीकार के आधुनिक शुद्ध स्वर :—(लम्बाइयाँ)

[१] षड्ज = ३६" तार षड्ज—१८"
[२] ऋषभ = ३२"
[३] गांधार = २८३'
[४] मध्यम = २७
[५] पंचम = २४"
[६] धैवत = २१३ और [७] निषाद १६३"

— विकृत स्वरों में, मंजरीकार के कोमल ग, नी की लम्बाइयां वही है जो श्री निवास के शुद्ध ग, नी की थीं। केवल कोमल ऋषभ के कोमल धैवत और तीव्र मध्यम के स्थान बदल दिए गए हैं। कोमल ऋषभ का स्थान षड्ज और शुद्ध ऋषभ के बीचो-बीच, और उसी के षड्ज पंचम भाव द्वारा कोमल धैवत का स्थान, स्थापित किया गया है। इस प्रकार कोमल ऋषभ का लम्बाई निकलती है ३४ इञ्च और कोमल धैवत की लम्बाई निकलती हैं २२३ इंच। मध्यम को शुद्ध मध्यम और पंचम के बीचो बीच रक्खा। अतः तीन मध्यम की लम्बाई हुई २५३ इञ्च। मञ्जरीकार के बारह स्वरों की लम्बाइयों से भी उनकी आंदोलन संख्यायें निकाली जा चुकी हैं। नीचे दी हुई तालिका में मध्यकाल ने श्री निवास के स्वरों और आधुनिक मंजरीकार के स्वरों की तुलना उनका तार की लम्बाइयों तथा आंदोलन संख्याओं के द्वारा की गई है और अंतिम खाने में यूरोपीय अथवा पाश्चात्य स्वर सप्तक के बारह स्वरों की आंदोलन संख्यायें भी तुलनार्थ दे दी गई हैं —

मध्यकालीन, आधुनिक वा पाश्चात्य स्वरों की तुलना :—

	स्वर नाम	श्री निवास के स्वर		मंजरी कार के स्वर		पाश्चात्य स्वर
		तार की लंबाई	आंदोलन संख्या	तार की लंबाई	आंदोलन संख्या	आंदोलन संख्या
१	शुद्ध सा	३६ इञ्च	२४०	३६ इञ्च	२४०	२४०
२	,, रे	३२ ,,	२७०	३२ ,,	२७०	२७०
३	,, ग	३० ,,	२८८	२८ ३/३ ,,	३०१ १७/४३	३०
४	,, म	२७ ,,	३२०	२७ ,,	३२०	३२०
५	,, प	२४ ,,	३६०	२४ ,,	३६०	३६०
६	,, ध	२१ १/३ ,,	४०५	२१ ३/७ ,,	४०५	४००
७	,, नी	२० ,,	४३२	१९ १/२ ,,	४५२ ४/७५	४५०
८	कोमल रे	३३ ३/३ ,,	२५९ ५/९	३४ ,,	२५४ २/३	२५६
९	कोमल ध	२२ २/२ ,,	३८८ ४/५	२२ ३/३ ,,	३८१ ४/७	३८४
१०	विकृत म	२५ ३/४ (तीव्रतर)	३४४ ६/२३	२५ ३/२ (तीव्र)	३३८ २४/७	३३७ १/२
११	,, ग	२८ ४/५ (तीव्र)	३०१ १७/४३	३० (कोमल)	२८८	२८८
१२	,, नी	१९ १/२ (तीव्र)	४५२ ४/७५	२२ (कोमल)	४३२	४३२

. उक्त तालिका मे दो मुख्य बातें स्पष्ट होती हैं। (१) एक तो यह कि मध्यकाल अथवा १५ वीं से १८ वीं शताब्दी तक उत्तर भारतीय संगीत ने जिस शुद्ध थाट अथवा स्वर सप्तक का प्रयोग होता था, वह आधुनिक संगीत के काफी थाट के सदृश था क्योंकि उनके शुद्ध ग और शुद्ध नी हमारे वर्तमान कोमल ग और कोमल नी हैं। (२) दूसरी बात यह पता चलती है कि भारतीय स्वरों और पाश्चात्य स्वरों में भी एक बहुत बड़ा साम्य है, मध्यकाल के तो सभी शुद्ध स्वर, पाश्चात्य सच्चे स्वर—सप्तक के स्वर हैं, जो वैज्ञानिक खोज के बाद सरल-गुणांतर तथा शुभ-स्वरसंवाद के आधार पर स्थित किए गए हैं। शुद्ध और विकृत मिलाकर आधुनिक सप्तक में भी वे सातों स्वर है।

इनके अतिरिक्त एक यह भी बात पता चलती है कि पाश्चात्य सप्तक में सप्तक भर में षड्ज—पंचम भाव नहीं है क्योंकि उसका धैवत ४२० आंदोलनों का है जब कि भारतीय धैवत ४०५ का है। ४०५, ऋषभ की आंदोलन संख्या २७० का ठीक डेढ़ गुना है। इस प्रकार भारतीय संगीत में सदा से षड्ज-पंचम भाव का महत्व माना जा रहा है।

प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक श्रुति-स्वर विभाजन

श्रुति-स्वर विभाजन की दृष्टि से भारतीय संगीत के सम्पूर्ण इतिहास को मुख्य तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है, प्राचीन काल, मध्य काल और आधुनिक काल इन तीनों कालों की अवधि, इनमे रचित ग्रंथ और उनमें प्रतिपादित मतों का संक्षिप्त उल्लेख नीचे किया जाता है :—

(१) प्राचीन काल :—इस काल को हम तेरहवीं शताब्दी तक मान सकते हैं। इसमें मुख्य दो ग्रंथकार हुए हैं। एक भरत और दूसरा शारङ्गदेव। पाँचवीं शताब्दी से पूर्व ही भरत ने अपना

प्रसिद्ध ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' लिखा और तेरहवीं शताब्दी में शारङ्गदेव ने 'सङ्गीत रत्नाकर' नामक ग्रंथ लिखा जिसे आज तक कर्नाटक और हिन्दुस्तानी सङ्गीतवाले अपना आधारिक ग्रन्थ मानने का प्रयास करते हैं। भरत और शारङ्गदेव, दोनों ने एक स्थान के अंतर्गत कुल बाईस श्रुतियाँ मानी हैं और उनका स्वरों में विभाजन एक ही सिद्धांत के अनुसार किया है :—

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः ।
द्वे द्वे निषादगांधारौ त्रिस्त्री ऋषभधैवतौ ।

अर्थात् सा, म, पा की चार—चार श्रुतियाँ, रे, ध की ३—३ श्रुतियाँ और ग नी की दो—दो श्रुतियाँ मानी हैं। फिर दोनों ने ही अपने सातों शुद्ध स्वरों की स्थापना उनकी अंतिम श्रुतियों पर की है। इसका विस्तृत विवरण प्रथम भाग में दिया जा चुका है।

प्राचीन काल में भरत और शारङ्गदेव की श्रुतियों के विषय में एक और बात उल्लेखनीय है, कि ये सब श्रुतियों को समान मानते थे अर्थात् श्रुति को ये एक नियत प्रमाण मानते थे। इसका अर्थ यह है कि दूसरी श्रुति पहली श्रुति से जितनी ऊँची थी उतनी ही ऊँची तीसरी श्रुति दूसरी श्रुति से थी और उतनी ही ऊँची तीसरी, दूसरे से इत्यादि अर्थात् प्रत्येक दो निकटवर्ती श्रुतियों का अंतर स्थान भर में समान था, जिसे प्रमाण श्रुत्यंतर अथवा 'प्रमाणश्रुति' कहते थे। इस विषय की आलोचना तृतीय भाग में दी जायगी।

(२) मध्य काल :—मध्य काल को हम चौदहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक मान सकते हैं। इस काल में मुख्य चार विद्वान हुए—(१) १५ वीं शताब्दी के प्रारंभ में लोचन कवि ने 'राग-तरंगिणी' नामक पुस्तक लिखी (२) १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में अहोबल पंडित ने 'संगीत पारिजात' नामक ग्रन्थ लिखा जिसमें प्रथम बार वीणा के तार पर सप्तक के ७ शुद्ध और ५ विकृत स्वरों के स्थान

निश्चित करके दिये गये हैं। (३) १७ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हृदयनारायण देव नामक विद्वान् ने दो पुस्तकें 'हृदय कौतुक' और 'हृदय प्रकाश' लिखी। (४) १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में पं० श्री निवास ने 'राग तत्वविबोध' नामक ग्रन्थ लिखा। हृदय नारायण और श्रीनिवास ने भी अपने ग्रन्थों में वीणा के तार पर स्वरों की स्थापना अहोबल के अनुसार ही की है।

मध्यकालीन उपरोक्त सभी विद्वानों ने बाईस श्रुतियाँ और उनका शुद्ध सात स्वरों में विभाजन प्राचीन 'चतुश्चतुश्चतुरचैव' के नियम के आधार पर स्वीकार किया है और प्राचीन पण्डितों की ही भाँति उन्होंने प्रत्येक स्वर की शुद्ध अवस्था उसकी अंतिम श्रुति पर ही मानी है, किन्तु प्राचीन और मध्य कालीन पण्डितों के मत में मुख्य अन्तर यह पता चलता है कि प्राचीन पण्डित तो सभी श्रुतियाँ समान मानते थे, किन्तु मध्यकालीन पंडित उन्हें असमान मानते थे। इसीलिए भरत व शारङ्गदेव को प्रत्येक स्वर का स्थान बताने के लिए तार की लम्बाइयों की शरण नहीं जाना पड़ा। जब प्रत्येक दो निकटवर्ती श्रुतियों का अन्तर एक ही हो, तब केवल श्रुतियों की संख्या बताने से स्वरों की पारस्परिक दूरी अथवा ऊँचाई-नीचाई स्वतः स्पष्ट हो जाती है। परन्तु मध्यकालीन पंडित सब श्रुतियों को समान नहीं मानते थे अतः उन्होंने १२ स्वरों के ठीक-ठीक स्थान वीणा के तार पर स्थिर किये।

(३) आधुनिक काल :—१६ वीं शताब्दी से आधुनिक काल आरम्भ हुआ। इस काल में लिखे गए मुख्य सङ्गीत शास्त्र के ग्रन्थ पं० विष्णु नारायण भातखंडे के हैं, जिनके नाम, 'अभिनवरागमंजरी' और 'लक्ष्यसङ्गीत' हैं। अभिनवरागमञ्जरी में भी मध्यकालीन पंडितों की प्रणाली पर भातखंडे जी ने आधुनिक १२ स्वरों के स्थान तार की लंबाई द्वारा बताए हैं परन्तु आधुनिक संगीत के अनुकूल शास्त्र

बनाने के लिए शुद्ध ग, शुद्ध नी आदि के स्थान बदल दिए हैं। मध्यकालीन शुद्ध ग, नी आधुनिक कोमल ग, नी की भाँति थे अर्थात् मध्यकालीन शुद्ध स्वर सप्तक आधुनिक काफी थाट सदृश था।

दूसरा मुख्य अन्तर जो आधुनिक काल में हो गया, वह यह था कि यद्यपि मंजरीकार ने भी 'चतुश्चतुश्चतुश्चैव' के नियमानुसार ही सात स्वरों में २२ श्रुतियों का विभाजन किया है, किन्तु प्रत्येक स्वर की शुद्ध अवस्था उसकी अन्तिम श्रुति पर न मान कर उसकी प्रथम श्रुति पर मानी है। प्राचीन और मध्य कालों में प्रत्येक शुद्ध स्वर अपनी अन्तिम श्रुति पर स्थापित था, इसका स्पष्टीकरण प्रथम भाग में भी हो चुका है।

कर्नाटक और हिन्दुस्तानी स्वरों की तुलना

कर्नाटक तथा हिन्दुस्तानी, दोनों सङ्गीत-पद्धतियों में बारह स्वर प्रयुक्त होते हैं और उनके स्थान भी प्रायः एक ही हैं। किन्तु स्वर-नामों में परिवर्तन हो गया है। उदाहरणार्थ, कर्नाटक शुद्ध ऋषभ और धैवत हमारे हिन्दुस्तानी कोमल ऋषभ और धैवत के सदृश हैं और हमारे शुद्ध रे, ध उनके शुद्ध ग, नी हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कर्नाटक शुद्ध स्वर-सप्तक हमारे स्वर-नामों के अनुसार इस प्रकार हैं :—

सा रे॒ रे म प ध॒ ध सां

क्योंकि हमारे रे॒ ध॒ = उनका शुद्ध रे, ध और

हमारा रे, ध = उनका शुद्ध ग, नी

इस थाट को दक्षिण में 'कनकांगी' कहा जाता है जो यहाँ के प्राचीन 'मुखारी' स्वर-सप्तक के सदृश हैं।

एक अन्य विशेषता कर्नाटक स्वरों में यह है कि उनमें कोमल स्वर-नाम कोई नहीं है अर्थात् शुद्ध स्वर ही सबसे नीची अवस्था

हैं—शेष सभी विकृत स्वर, शुद्ध से ऊँचे ही होते हैं। जैसे शुद्ध रे के बाद ये चतुः श्रुति रे अथवा शुद्ध ग मानते हैं और शुद्ध ग के बाद साधारण ग (जिसे ये षटश्रुति भी कहते हैं) मानते हैं। साधारण ग के बाद अन्तर ग भी मानते हैं। उनका साधारण ग हमारे हिन्दुस्तानी कोमल ग के सदृश हैं और अन्तर ग हमारे शुद्ध ग के सदृश। यही क्रम धैवत और निषाद स्वरों में मिलता है। शुद्ध धैवत के बाद क्रमशः शुद्ध निषाद (अथवा चतुःश्रुति ध), कैशिक निषाद (अथवा षटश्रुति ध) और काकली निषाद आते हैं जो क्रम से हमारे हिन्दुस्तानी शुद्ध धैवत, कोमल निषाद और शुद्ध निषाद के सदृश हैं। तीव्र म के स्थान पर ये प्रति म मानते हैं। निम्नलिखित तालिका से यह भेद और भी स्पष्ट हो जायगा :—

संख्या	हिन्दुस्तानी स्वर-नाम	कर्नाटकी स्वर नाम
१	सा..............	सा
२	कोमल रे..............	शुद्ध रे
३	शुद्ध रे..............	शुद्ध ग (चतुःश्रुति रे)
४	कोमल ग..............	साधारण ग (षटश्रुति रे)
५	शुद्ध ग..............	अंतर ग
६	शुद्ध म..............	शुद्ध म
७	तीव्र म..............	प्रति म
८	प..............	प
९	कोमल ध..............	शुद्ध ध
१०	शुद्ध ध..............	शुद्ध नी (चतुःश्रुति ध)
११	कोमल नी..............	कैशिक नी (षटश्रुति ध)
१२	शुद्ध नी..............	काकली नी

व्यंकटमखी के ७२ थाट

दक्षिण के संगीत विद्वान् पं० व्यंकटमखी ने १७वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में 'चतुर्दंडिप्रकाशिका' नामक ग्रंथ लिखा, जिसमें उन्होंने गणित द्वारा यह सिद्ध किया है कि सप्तक के शुद्ध और विकृत १२ स्वरों में से अधिक से अधिक कुल ७२ थाट उत्पन्न हो सकते हैं और प्रत्येक थाट से जाति-भेद के आधार पर कुल ४८४ राग बनाये जा सकते हैं।

व्यंकटमखी के ७२ थाटों की रचना समझने से पूर्व, यह जान लेना आवश्यक है कि उसने थाट के किन मुख्य नियमों का आधार लिया है। व्यंकटमखी के थाट में निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं :-

(१) थाट को सम्पूर्ण होना चाहिए। अर्थात् उसमें सप्तक के सातों स्वर होने चाहिए, चाहे कोई स्वर अपने शुद्ध रूप में हो, चाहे विकृत। वे सातों स्वर क्रमानुसार होंगे।

(२) थाट गाया नहीं जाता। अतः उसमें रंजकता की आवश्यकता नहीं होती। इसीलिए यदि कभी एक स्वर के दो रूप भी आ जायँ तो हानि नहीं।

[नोट :—यहाँ एक महत्वपूर्ण विषय समझ लेना चाहिये। एक प्रकार से देखा जाय तो उपरोक्त दोनों नियम एक दूसरे के विरोधी हैं, क्योंकि दूसरे नियम के अनुसार, यदि सात स्वरों में से किसी एक स्वर के दोनों रूप, एक के बाद दूसरा, किसी थाट में ले लिए जायेंगे, तो फिर सातों स्वर उस थाट में किस प्रकार आयेंगे, और थाट संपूर्ण कैसे बनेगा ? स्वरों की संख्या तो सात अवश्य हो जायगी पर एक स्वर के ही दो रूप आ जाने से अन्य एक न एक स्वर अवश्य कम करना पड़ेगा। उदाहरणार्थ, हिंदुस्तानी स्वर-नामों को लेते हुए यदि हम किसी थाट में गांधार के दो रूप सम्मिलित

करें, तो थाट में केवल पाँच स्वर और लिए जा सकेंगे, जब कि शेष स्वर छः बचे हैं :—सा, रे, म, प, ध और नी। अतः एक न एक स्वर इनमें से छोड़ना ही पड़ेगा जैसे सा ग ग म प ध नी—इसमें ग के दो रूप लेकर और रे छोड़कर तब सात स्वरों का थाट बना, परन्तु यह थाट सम्पूर्ण नहीं क्योंकि सब स्वर इसमें नहीं हैं। यह थाट उपरोक्त प्रथम आवश्यक नियम का पालन नहीं करता। इससे सिद्ध होता है कि दोनों नियमों का आपस में विरोध है।

किन्तु इस कठिनाई को सुलझाया जा सकता है। वास्तव में व्यंकटमखी के स्वर-नामों की विशेषता से ही यह समस्या हल हो जाती है। ऊपर कर्नाटक पद्धति के स्वरों का वर्णन तथा उनका हिन्दुस्तानी स्वर-नामों से मिलान किया जा चुका है। व्यंकटमखी के भी बारहों स्वर कर्नाटक के स्वर से समान हैं वा नाम भी वही हैं, केवल एक अंतर यह है कि कर्नाटक आधुनिक स्वर सप्तक के साधारण गांधार का दूसरा नाम षटश्रुति ऋषभ दिया गया है और कैशिक निषाद का दूसरा नाम षटश्रुति धैवत दिया गया है परन्तु व्यंकटमखी ने साधारण गांधार और कैशिक निषाद को दूसरे नाम पंचश्रुति ऋषभ और पंचश्रुति धैवत दिये थे। व्यंकटमखी भी कर्नाटक पद्धति का ही विद्वान् था किन्तु कुछ कारणों से वहाँ के स्वर-नामों में आधुनिक काल में आकर यह साधारण सा परिवर्तन हो गया, जो नहीं के ही बराबर है। अब, ऊपर की समस्या को हल करने के लिए यह जान लेना पर्याप्त है कि व्यंकटमखी ने जिन थाटों में एक ही स्वर के दो रूप लिए हैं, उनमें या तो गांधार के दो रूप लिए हैं और या निषाद के और ऐसा करते समय उसने गांधार के एक रूप को तो चतुःश्रुति रे कहकर पुकारा है और दूसरे रूप को साधारण ग अथवा अन्तर ग कह कर। इसी प्रकार निषाद के दो रूपों को एक थाट में रखते समय उसने एक रूप को तो चतुःश्रुति ध अथवा

दूसरे रूप को कैशिक नी अथवा काकली नी कहा। इससे सातों स्वरों की उपस्थिति प्रत्येक थाट में मानी जा सकी।

अतएव व्यंकटमखी के थाट के विषय में जिन दो नियमों का उल्लेख किया गया है, उनसे दूसरे नियम की इतनी आवश्यकता नहीं सिद्ध होती, उनके स्थान पर यदि यह नियम बना दें, कि थाट में सा, म, प स्वर अवश्य होंगे और शेष चार स्वर कोई भी चुने जा सकेंगे, तो अधिक उपयुक्त होगा।

अस्तु, अब हम एक सप्तक से कुल ७२ थाट किस प्रकार संभव हैं, यह व्यंकटमखी के ही संकेत के अनुसार नीचे बतलाया जाता है :—

'पहले बारह स्वरों का पूर्ण सप्तक लिखकर, तीव्र मध्यम को शुद्ध मध्यम के ऊपर, पंक्ति से पृथक रख दिया और अंत में तार सां जोड़ दिया। फिर पूरे सप्तक के दो भाग मध्यम से कर दिये। ये दो भाग सप्तक का पूर्वार्ध और सप्तक का उत्तरार्ध हुए। पूर्वार्ध में छः स्वर सा रे रे ग ग म हैं और उत्तरार्ध में छः स्वर प ध ध नी नी सां हैं। अब थाट में तार सां लेकर तो कुल आठ स्वर हो जाएँगे, अतः सप्तक के पूर्वार्ध में से चार-चार स्वरों के समूह चुने गये और सप्तक के उत्तरार्ध में से भी चार-चार स्वरों के समूह चुने गये और फिर विभिन्न पूर्वार्ध के समूहों में उत्तरार्ध के समूहों को जोड़ कर पूर्ण थाट बना लिए गए। सप्तक के पूर्वार्ध से चार-चार स्वरों के जो समूह बनाये गये वे थाट अथवा मेल के पूर्वार्ध अथवा पूर्व मेलार्ध हैं और इसी प्रकार सप्तक के उत्तरार्ध से बनाये गये चार स्वरों के समूहों को उत्तर मेलार्ध कहेंगे।

नीचे दी हुई तालिका से स्पष्ट हो जायगा कि किस प्रकार सप्तक के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध, दोनों के छः छः स्वरों से चार-चार स्वरों के

छः छः पूर्वमेलार्ध और छः छः उत्तरमेलार्ध बन सकते हैं; उससे अधिक नहीं।

पूर्ण सप्तक

सप्तक का पूर्वार्ध (मँ)	सप्तक का उत्तरार्ध
सा रे रे ग ग म	प ध ध नी सा
पूर्व मेलार्ध	उत्तर मेलार्ध
(१) सा रे रे म	(१) प ध ध सां
(२) सा रे ग म	(२) प ध नी सां
(३) मा रे ग म	(३) प ध नी सां
(४) सा रे ग म	(४) प ध नी सां
(५) सा रे ग म	(५) प ध नी सां
(६) सा ग ग म	(६) प नी नी सां

इनमे से प्रत्येक पूर्व मेलार्ध में छहों उत्तर मेलार्ध बारी-बारी जोड़ने से छः पूर्ण मेल अथवा थाट बने और इस प्रकार कुल छः पूर्वमेलार्धों में बारी-बारी छः उत्तरमेलार्धों को जोड़ने से कुल ६×६ =३६ थाट उत्पन्न हुए। इन छत्तीसों थाटों मे शुद्ध मध्यम के स्थान पर तीव्र मध्यम कर देने से दूसरे छत्तीस थाट बने। अर्थात् कुल मिलाकर एक सप्तक के बारह स्वरों में से अधिक से अधिक कुल ७२ थाट सम्भव हैं। उपरोक्त सभी थाटों में सा, म और प स्वर हैं। पहले और छठे पूर्वमेलार्धों तथा पहले और छठे उत्तरमेलार्धों में हिन्दुस्तानी स्वर नामों के अनुसार एक स्वर के दो रूप तथा एक न एक स्वर गायब लगता है किन्तु कर्नाटक स्वर नामों के अनुसार ये सभी मेलार्ध पूर्ण हैं क्योंकि कर्नाटक स्वरनामों में इस प्रकार माने जायेंगे :—

तालिका से एक थाट से जाति भेद के आधार पर कुल ४८४ रागों की रचना अधिक स्पष्ट हो जायगी :—

१—सम्पूर्ण—सम्पूर्ण राग..............................१
२—सम्पूर्ण—पाडव राग..............................६
३—सम्पूर्ण—ओड़व राग..............................१५
४—पाड़व—सम्पूर्ण राग..............................६
५—पाड़व—पाड़व राग..............................३६
६—पाड़व—ओड़व राग..............................६०
७—ओड़व—सम्पूर्ण राग..............................१५
८—ओड़व—पाड़व राग..............................६०
९—ओड़व—ओड़व राग..............................२२५
१ थाट से उत्पन्न कुल राग..............................=४८४

इसलिए ७२ थाटों में से कुल राग ७२ × ४८४ = ३४८४८ , उत्पन्न हो सकते हैं। यदि देखा जाय तो, रागों की संख्या और भी बढ़ सकती है क्योंकि १ थाट के ४८४ राग केवल जाति-भेद के आधार पर बने हैं। इनमे से कोई एक राग लेकर, वादी—सम्वादी, पकड़ चलन आदि के भेद से अनेक नए राग बनाये जा सकते हैं और इस प्रकार कुल रागों की संख्या लाखों तक पहुँचाई जा सकती है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। राग की परिभाषा में रंजकता का होना अनिवार्य माना गया है। वह राग नहीं जो मधुर न हो, रंजक न हो। अतः उपरोक्त रागों में से अनेक राग कर्णकटु होने के कारण राग नहीं माने जा सकते। रंजकता को मापदंड बनाकर रागों की संख्या अत्यन्त मर्यादित हो जाती है और इसीलिए आज अधिक प्रचार में १५०—२०० से अधिक राग नहीं हैं।

अब, यदि हम एक थाट, बिलावल ले लें और उक्त सब प्रकार की जातियों के कितने आरोह-अवरोह अथवा राग बन सकते हैं, यह पता चलना चाहें तो, पहले हम यह देखेंगे कि ७ स्वरों के थाट में से संपूर्ण आरोह या संपूर्ण अवरोह तो केवल एक ही बन सकता है, एक से अधिक नहीं। और यह होगा सा रे ग म प ध नी (आरोह) अथवा सां नी ध प म ग रे (अवरोह)। परन्तु उन ७ स्वरों में से छः छः स्वरों के षाड्व आरोह छः बन सकेंगे। थाट है—

सा रे ग म प ध नी

सा तो प्रत्येक आरोह में रहेगा। इसके अतिरिक्त पाँच स्वर और लेकर तब षाड्व और बनेंगे। अर्थात् प्रत्येक आरोह में बारी-बारी एक-एक स्वर छोड़ना पड़ेगा। पहले रे वर्जित किया तो एक आरोह बना (सा ग म प ध नी), फिर ग वर्जित किया तो दूसरा आरोह बना (सा रे म प ध नी) फिर इसी प्रकार क्रमशः म, प, ध और नी स्वरों को छोड़ कर तीसरा, चौथा, पाँचवाँ और छटा आरोह बनेगा। इस प्रकार छः स्वरों के षाड्व आरोह छः बनते हैं और इसी ढंग से षाड्व अवरोह भी छः बनते हैं। अब यह देखना है कि ओड़व आरोह अथवा ओड़व अवरोह ७ स्वरों के थाट से कितने निकलेंगे। ओड़व आरोह में पाँच स्वर होंगे। अतः ऊपर लिखे थाट के ७ स्वरों में से बारी-बारी दो-दो स्वरों की जोड़ियाँ वर्जित करनी होंगी। जैसे पहले रे के साथ ग को भी वर्जित किया तो एक ओड़व आरोह बना (सा म प ध नी)। फिर रे के ही साथ म छोड़ने से दूसरा ओड़व आरोह (सा ग प ध नी) बना इसी प्रकार रे के साथ प, ध, नी स्वर छोड़ते हुए तीसरा, चौथा या पाँचवा ओड़व आरोह बनेगा। अर्थात् रे के साथ अन्य पाँच स्वरों को बारी-बारी छोड़कर कुल पाँच ओड़व आरोह बने। फिर ग के साथ बारी-बारी म, प, ध और नी को छोड़ते हुए अन्य ४ ओड़व आरोह बनेंगे। फिर म के

साथ बारी-बारी प, ध और नी को छोड़ते हुए अन्य ३ औड़व-आरोह बनेंगे। फिर प के साथ ध और नी को बारी-बारी वर्जित करके दो और औड़व आरोह मिलेंगे। अन्त में ध के साथ नी छोड़ते हुए एक अन्य आरोह मिलेगा। इस प्रकार कुल औड़व आरोह एक थाट में से ५+४+३+२+१=१५ बनेंगे। इसी प्रकार कुल औड़व अवरोह भी १५ बनेंगे।

अब आरोहों में क्रमशः अवरोहों को जोड़ने से अनेक राग बन जायेंगे। उदाहरणार्थ पहले हम संपूर्ण-संपूर्ण जाति के राग बनायें, तो पता चलेगा कि सम्पूर्ण आरोह एक ही निकलता है और सम्पूर्ण अवरोह भी एक ही है, अतः दोनों को जोड़कर केवल एक ही राग सम्पूर्ण-सम्पूर्ण जाति का बन सकता है। इसके बाद सम्पूर्ण-षाड़व जाति के राग कुल छः बनेंगे क्योंकि सम्पूर्ण आरोह तो है एक और षाड़व अवरोह बनते हैं छः और उस एक आरोह में बारी-बारी छहों अवरोहों को जोड़कर कुल छः राग सम्पूर्ण-षाड़व जाति के बनाए जा सकते हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण औड़व जाति के राग कुल १५ बनेंगे क्योंकि १ सम्पूर्ण आरोह होगा और १५ औड़व अवरोह होंगे। इन ३ जातियों के बाद षाड़व-संपूर्ण, षाड़व-षाड़व और षाड़व-औड़व जातियों के राग बनाये जायेंगे जिनकी संख्या क्रमशः ६:३६ और ६० होगी। षाड़व-षाड़व राग ३६ इसलिए होंगे क्योंकि ६: षाड़व आरोहों में से प्रत्येक में बारी-बारी छः षाड़व अवरोह जोड़े जायेंगे (६×६= ३६) और ६० षाड़व-औड़व राग इसलिए बनेंगे क्योंकि छः षाड़व आरोहों में बारी-बारी १५ औड़व अवरोह जुड़ेंगे (६×१५=६०)। इनके बाद औड़व सम्पूर्ण जाति के राग कुल १५ बनेंगे, औड़वषाड़व के १५×६=६० बनेंगे और औड़व-औड़व जाति के राग १५ ×१५ = २२५ बनेंगे। निम्नलिखित

पूर्वमेलार्ध (१) सा रे रे म=सा, शुद्ध रे, शुद्ध ग, म
(६) सा ग ग म = सा, षटश्रुति रे, अंतर ग, म
उत्तर मेलार्ध (१) प ध ध सां = प; शुद्ध ध, शुद्ध-नी, सां
(६) प नी नी सां=प, षटश्रुति ध, काकली नी सां

किन्तु हिन्दुस्तानी स्वर नामों के अनुसार, यदि हम गणि
द्वारा यह निकालना चाहें कि एक सप्तक में कुल कितने थाट ब
सकते हैं तो ऊपर दिये हुए पूर्व मेलार्धों में से पहले और छठे का
देने पड़ेंगे क्योंकि रे रे अथवा ग ग एक थाट में हम नहीं रख
सकेंगे। इसलिए हमें केवल चार पूर्व मेलार्ध २ रे, ३ रे, ४ थे औ
५ वें और चार ही उत्तर मेलार्ध लेकर थाट बनाने पड़ेंगे जिनकी
संख्या ४×४=१६ होगी। शुद्ध मध्यम युक्त १६ थाट हुए। तीव्र
मध्यम युक्त भी १६ थाट बनेंगे। इस प्रकार हिन्दुस्तानी संगीत में
एक सप्तक से अधिक से अधिक कुल १६+१६=३२ थाट उत्पन्न
हो सकते हैं, जब कि कर्नाटक संगीत में एक सप्तक में कुल ७२ थाट
उत्पन्न हो सकते हैं।

व्यंकटमखी के ४८४ राग

७२ थाटों की रचना के पश्चात् व्यंकटमखी ने प्रत्येक थाट से
उत्पन्न होने वाले अधिक से अधिक ४८४ रागों की रचना-विधि
समझाई है। यह रचना राग की जाति के आधार पर हुई है। राग
मुख्यतः तीन जाति के होते हैं, संपूर्ण जाति, षाड़व जाति और
ओड़व जाति। किन्तु इनमें से आरोह-अवरोह का भेद दिखाकर
कुल नौ जातियाँ हो जाती हैं, १ संपूर्ण-संपूर्ण २ संपूर्ण-षाड़व ३
संपूर्ण ओड़व ४ षाड़व-संपूर्ण ५ षाड़व-षाड़व ।६ षाड़व ओड़व ७
ओड़व-सपूर्ण ८ ओड़व-षाड़व और ओड़व-ओड़व। इनका वर्णन
पीछे किया जा चुका है।

स्वरा और समय को दृष्टि से रागों के तीन वर्ग

स्वर समय अनुसार सभी रागों को मुख्य तीन वर्गों में विभाजित किया गया है :—

(१) कोमल रे और कोमल ध वाले राग 'अर्थात् संधि प्रकाश राग'
(२) शुद्ध रे और शुद्ध ध वाले राग और
(३) कोमल ग और कोमल नी वाले राग।

१ संधिप्रकाश राग :—

यह बताया जा चुका है कि कोमल रे और कोमल ध वाले रागों को संधिप्रकाश राग कहते हैं क्योंकि वे सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय गाये जाते हैं जबकि दिन और रात की संधि होती है। इस वर्ग के रागों का समय ४ बजे से ७ बजे ,तक प्रातःकाल अथवा ४ बजे से ७ बजे तक सायंकाल स्वीकार किया गया है। इस वर्ग में रे-ध का कोमल होना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक ग का शुद्ध होना है क्योंकि यदि ग कोमल होगा, तो यह राग उपरोक्त तीसरे वर्ग में आ जायगा।

इस, संधिप्रकाश रागों के वर्ग के नियम का एक अपवाद भी मिलता है। मारवा राग सन्धिप्रकाश राग भी है और वह गाया जाता है सूर्यास्त के समय, किन्तु अपवाद यह है कि उसमें धैवत शुद्ध है। प्रातःकाल के सन्धिप्रकाश रागों में शुद्ध-मध्यम की प्रधानता देखा गई है, जैसे भैरव, कालिंगड़ा आदि और सायंकाल के सन्धिप्रकाश रागों में तीव्र मध्यम की प्रधानता रहती है जैसे मारवा, श्री आदि। प्रातःकाल के जिन सन्धिप्रकाश रागों में दोनों मध्यम प्रयुक्त होते हैं उनमें भी तीव्र की अपेक्षा शुद्ध मध्यम अधिक प्रबल रहता है जैसे रामकली और ललित रागों में। इसी प्रकार सायंकाल के जिन

सधिप्रकाश रागों में दोनों मध्यम प्रयुक्त होते हैं इनमें शुद्ध मध्यमकी अपेक्षा तीव्र मध्यम अधिक प्रबल रहता है जैसे पूर्वी आदि। सधिप्रकाश राग अधिकतर भैरव, पूर्वी और मारवा थाटों के होते हैं। लेखक का सुझाव यह है कि इस प्रथम वर्ग को कोमल रे और कोमल ध वाले रागों का वर्ग न कह कर यदि कोमल रे और शुद्ध ग वाला वर्ग कहा जाय तो अधिक समीचीन होगा। इसके दो मुख्य कारण हैं :—

(अ) एक तो यह कि केवल रे और ध के कोमल होने से ही राग इस वर्ग में नहीं रक्खे जा सकते जब तक कि उनमें शुद्ध गाधार न हो। अत शुद्ध ग के प्रयोग का भी उल्लेख इस वर्ग के नामकरण में होना चाहिये।

(ब) दूसरा कारण यह है कि मारवा भी सधिप्रकाश राग है किन्तु उसका धैवत कोमल नहीं है। अत यदि इस वर्ग को रे कोमल और ग शुद्ध वाला वर्ग कहा जाय, तो मारवा भी इस नियम में सम्मिलित हो सके और उसे अपवाद मानने की आवश्यकता न पड़े।

(२) रे, ध शुद्ध वाले राग :—

रे, ध शुद्ध वाले राग अधिकतर बिलावल, कल्याण और खमाज थाटों के राग होते हैं और उनके गाने का समय सधिप्रकाश रागों (अर्थात् प्रथम वर्ग के रागों) के बाद ७ बजे से दस बजे तक सवेरे अथवा ७ बजे से १० बजे शाम को माना गया है। कुछ विद्वान् इनका समय ७ से १२ बजे तक मानते हैं, इस वर्ग में भी गाधार का शुद्ध होना अत्यंत आवश्यक है। इसलिए लेखक के मतानुसार इस वर्ग को रे ध शुद्ध वाला वर्ग न कहकर रे ग शुद्ध वाला वर्ग कहना अधिक उपयुक्त होगा, जिससे शुद्ध ग के प्रयोग की अनिवार्यता भी स्पष्ट हो जाय और साथ ही प्रथम वर्ग (रे कोमल, ग शुद्ध) के नामकरण से समता भी हो जाय। (अर्थात् दोनों वर्गों में रे और ग द्वारा ही नियम बन जायें—एक में रे कोमल, ग शुद्ध और दूसरे में रे शुद्ध, ग शुद्ध)

रे, ध शुद्ध वाले वर्ग के रागों मे भी मध्यम स्वर का पर्याप्त महत्व है। इस वर्ग के, सवेरे ७ से १० तक गाये जाने वाले रागों में शुद्ध मध्यम की प्रधानता रहती है और इसी वर्ग के, शाम को ७ से १० बजे तक गाये जाने वाले रागों में तीव्र मध्यम प्रधान रहता है। सवेरे के रागों के नमूने बिलावल, गोड़सारंग आदि हैं जिनमें शुद्ध मे प्रधान है और रात के राग यमन, शुद्धकल्याण आदि हैं जिनमें तीव्र म का महत्व शुद्ध म से अधिक है। किन्तु इस नियम के अपवाद अनेक, जैसे रात्रि के खमाज आदि रागों में शुद्ध मध्यम प्रबल है, तीव्र मध्यम लगता ही नहीं और दिन के रागों में तीसरे वर्ग के तोड़ी आदि रागों में तीव्र म प्रबल है शुद्ध म लगता ही नहीं। किन्तु इन अपवादों के कारण, मध्यम स्वर के विषय में एक अत्यंत रोचक नियम बन गया है, जिसका वर्णन आगे किया जायगा (अध्वदर्शक स्वर के रूप में)।

(३) ग, नी कोमल वाले राग

ग, नी कोमल वाले रागों का समय रे, ध शुद्ध वाले वर्ग के रागों के बाद आता है अर्थात् वे दिन में १० बजे से ४ बजे तक अथवा रात को १० बजे से ४ बजे तक गाये जाते हैं। दूसरे मत के अनुसार (जिसमें रे, ध शुद्ध वाले रागों का समय ७ से १२ बजे तक माना जाता है), ग, नी कोमल वाले राग १२ से ४ तक तीसरे प्रहर या रात्रि में १२ से ४ तक गाये जाते हैं। इस वर्ग में भैरवी आसावरी, काफी और तोड़ी थाटों के राग आते हैं। इस वर्ग की मुख्य पहचान गांधार का कोमल होना है, चाहे निषाद कभी शुद्ध भी हो जाय, जैसे पटदीप एक अपवाद है जिसमें ग तो कोमल है किन्तु नी शुद्ध है। अतः लेखक का मत यह है कि इस वर्ग को कोमल कोमल ग वाला वर्ग कह कर पुकारा जाय, जिससे मुख्य विशेषता

भी आ जाय, पटदीप, का अपवाद भी मिट जाय और तीसरे अभी जिन दो स्वरों (रे और ग) के द्वारा प्रथम और द्वितीय वर्ग पुकारे गये थे (लेखक के मतानुसार) उनके बाहर का स्वर निषाद न लाना पड़े।

ग, नी कोमल वाले वर्ग का समय १० बजे से ४ बजे तक मानना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि (१) भैरवी, तोड़ी और देश रागों का समय १० के बाद मानना समुचित न होगा, वे चाहें १ बजे तक गायें जायें, पर उनके गायन का प्रारंभिक समय अवश्य ही ११ बजे से मानना चाहिये। (२) रात्रि के अनेक राग जिनमें ग कोमल है, जैसे बागेश्री, काफी आदि को भी १० बजे अथवा कभी-कभी तो उससे भी पूर्व ह गाना आरम्भ कर दिया जाता। १२ बजे के बाद इनका समम मानना ठीक नहीं। (३) इस वर्ग में चार थाटों के राग आते हैं। रागों की संख्या भी अधिक है अतः १० से ७ बजे तक का इतना लंबा समय इस वर्ग के लिए कुछ सरलता से खप सकेगा।

अतः संक्षेप में स्वर व समय के आधार पर निम्नलिखित प्रकार का वर्गीकरण अधिक संगत सिद्ध होगा:—

(१) रे कोमल, ग शुद्ध वाला वर्ग,—(संधिप्रकाश राग)
—समय ४ बजे से ७ बजे तक।

(२) रे शुद्ध, ग शुद्ध वाला वर्ग,
—समय ७ से १० बजे तक।

(३) ग कोमल वाला वर्ग,
—समय १० से ४ बजे तक।

समय चक्र

रागों का समय चक्र यही है कि जिस प्रकार सूर्योदय से सूर्यास्त तक पहले रे, ध कोमल वाले संधिप्रकाश राग, फिर रे, शुद्ध वाले राग, फिर ग, नी कोमल वाले राग बनाये जाते हैं। उसी प्रकार

सूर्यास्त से अगले सूर्योदय तक फिर वही क्रम जारी हो जाता है। अर्थात् सूर्यास्त पर रे, ध कोमल वाले राग, फिर रात्रि में गाये जाने वाले रे ध शुद्ध स्वरों के राग और फिर ग, नी कोमल वाले राग गाये जाते हैं। दूसरे दिन के सूर्योदय से फिर वही चक्र आरम्भ हो जाता है। इसी से इसे रागों का समय-चक्र कहते हैं। उसको और अधिक विस्तार व स्पष्टरूप से इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:–

(१) प्रातःकाल ४ से ७ बजे तक :
रे, ग वाले भैरव, पूर्वी, मारवा थाट के प्रात गेय संधि प्रकाश राग,

(२) दिन के ७ बजे से १० बजे तक :—
रे, ग वाले विलावल; कल्याण, खमाच थाट के दिन के राग,

(३) दिन के १० से ४ बजे शाम तक :—
ग वाले काफी, आसावरी भैरवी, तोड़ी थाट के दिन के राग,

(४) सायंकाल ४ से ७ बजे तक :—
रे, ग वाले भैरव, पूर्वी मारवा थाट के सायँ-गेय संधिप्रकाश राग,

(५) रात्रि के ७ से १० बजे तक :—
रे, ग वाले विलावल, कल्याण खमाज थाट के रात्रि के राग,

(६) रात्रि के १० से ४ बजे सवेरे तक :—
ग वाले काफी, आसावरी, भैरवी, तोड़ी थाट के रात्रि के राग,

(Margin markings: श्र ↓ ध ; श्र ↓ ध ; ↑)

सवेरे से शाम का ही क्रम शाम से अगले दिन के सवेरे तक चलता है और अगले दिन के सवेरे से फिर वही क्रम चलने लगता है। इस प्रकार चक्कर जारी रहता है।

दिन रात के चौबीस घंटों में कुल आठ प्रहर तीन-तीन घंटे के होते हैं। अधिकतर दिन का प्रथम प्रहर ६ बजे सवेरे से आरंभ होता है पर यदि उपरोक्त वर्गीकरण से मिलान की सुविधा के लिए दिन का प्रारंभ ७ बजे से मान लिया जाय तो दिन के प्रथम प्रहर (अर्थात् ७ से १० तक) रे, ध शुद्ध वाले राग और दिन के दूसरे या तीसरे प्रहर में (१० से १ और १ से ४) ग नी कोमल वाले राग गाये जायेंगे। फिर दिन के चौथे प्रहर में (४ से ७) शाम के रे, ध कोमल संधिप्रकाश राग गाये जायेंगे। इसी प्रकार क्रम जारी रहेगा। रात्रि का प्रथम प्रहर ७ से १० तक, द्वितीय प्रहर १० से १ तक तृतीय प्रहर १ से ४ तक और चतुर्थ प्रहर ४ से अगले दिन के ७ बजे सवेरे तक। किन्तु दिन का प्रारंभ ६ बजे से मानना अधिक उचित होगा।

अध्वदर्शक स्वर

मध्यम स्वर को अध्वदर्शक स्वर कहा गया है, क्योंकि वह रागों के समय को निश्चित करने में पथप्रदर्शक काय करता है। उदाहरणार्थ जिन रे, ध कोमल वाले संधिप्रकाश रागों में शुद्ध म प्रबल हो. उन्हें सवेरे का समझना चाहिये और जिनमें तीव्र म प्रबल हो उन्हें सायंकाल का समझना चाहिये।

इसके अतिरिक्त सवेरे से रात तक जिस प्रकार मध्यम अपनी प्रकृति बदलता जाता है यह भी जानने योग्य विषय है। १ सवेरे के संधिप्रकाश रागों में पहले शुद्ध मध्यम का प्राधान्य रहता है, जैसे केवल शुद्ध मध्यम वाले भैरव, कालिंगड़ा आदि राग। २ फिर ऐसे संधिप्रकाश राग आते हैं जिनमें प्रयोग तो दोनों मध्यमों का होता है,

परन्तु तीव्र मध्यम की अपेक्षा शुद्ध मध्यम का अत्यधिक महत्व रहता है, जैसे रामकली और ललित आदि ३ फिर जब दूसरे वर्ग के रे ध शुद्ध वाले राग आते हैं, तब भी केवल शुद्ध मध्यम का प्राबल्य रहता है, जैसे बिलावल आदि। ४ फिर ग कोमल वाले तीसरे वर्ग के रागों में दो प्रकार के राग मिलते हैं। एक तो वे, जिनमें शुद्ध म का ही चमत्कार है जैसे भैरवी, देसी, आसावरी आदि। दूसरे वे जिनमें केवल तीव्र मध्यम का चमत्कार है जैसे तोड़ी आदि। तीसरे प्रहर तक ये दोनों प्रकार के तीसरे वर्ग के राग मिलते हैं जिनमें ग कोमल है जैसे शाम के संधि प्रकाश रागों के आगमन से पूर्व मुलतानी में तीव्र मध्यम और भीमपलासी में शुद्ध मध्यम का ही महत्व है।

फिर शाम के संधिप्रकाश रागों में केवल तीव्र मध्यम का महत्व रह जाता है, जैसे मारवा, श्री आदि। पूर्वी में दोनों मध्यम आते हैं पर तीव्र म अधिक महत्व रखता है। इसके उपरांत दूसरे वर्ग के कल्याण, हमीर केदार आदि रागों में तीव्र मध्यम का महत्व है यद्यपि केदार हमीर आदि में तीव्र की अपेक्षा शुद्ध मध्यम का महत्व अधिक हो जाता है। तीसरे वर्ग में जाकर रात्रि के ग कोमल वाले रागों में फिर शुद्ध मध्यम वाले रागों का प्राधान्य हो जाता है जैसे बागेश्री, काफी मालकंस आदि। साथ ही पूरिया में उस समय तीव्र मध्यम का चमत्कार मिलता है।

इस प्रकार, यद्यपि मध्यम के स्वरूप परिवर्तन की रूप रेखा बहुत स्पष्ट नहीं है, अपितु समय निर्धारण में उसका महत्व अवश्य है और यदि कुछ रागों को अपवाद-स्वरूप मान लें, तो हमें सरलता पूर्वक इस विषय में कुछ निर्णय कर सकते हैं।

द्वितीय अध्याय

लयकारी का नामकरण

संगीत में गायन-वादन आदि के समय पहले तालों अथवा तबले द्वारा ठाह की लय निश्चित कर ली जाती है अर्थात् एक मात्रा का माप निश्चित हो जाता है। उसके बाद, गायक-वादक तान, आलाप, बोलतान, दून तिगुन आदि करते हुए कभी ठाह की एक-एक मात्रा में ही एक-एक स्वर लेकर आलाप करता है, (यह हुई ठाह लय), कभी वह ठाह से भी आधी लय में आलाप करता है, अर्थात् एक मात्रा के अक्षर अथवा स्वर को दो मात्रा बढ़ाकर आलाप करता है (यह है कि आधी लय या अधगुन) कभी वह दो मात्राओं के भाग को एक ही मात्रा में (दुगुन), कभी तीन मात्राओं को एक मात्रा में (तिगुन) और कभी तीन मात्राओं को दो मात्राओं के भीतर गाता-बजाता है। दो मात्राओं को तीन मात्राओं के गाने का अर्थ हुआ एक में डेढ़ मात्रा गाना, अतः इस लय को डेढ़गुन अथवा आड़ कहेंगे। चार मात्राओं में तीन मात्रायें बोली जायेंगी, तो एक मात्रा में $\frac{3}{4}$ अर्थात् पौन मात्रा बोली जायगी, अतः इस लयकारी को पौनगुन की लयकारी कहेंगे, इत्यादि।

अर्थात् किसी लयकारी को समझने के लिये अथवा उसका नामकरण करने के लिए, पहले यह देखना पड़ता है कि गायक-वादक, ठाह लय की निश्चित माप वाली कितनी मात्राओं के अपने गीत अथवा गत की कितनी मात्रायें कह रहा है और फिर उसी से यह निकाला जाता है कि उसने एक मात्रा के अन्तर्गत कितनी मात्रायें

कहीं। एक मात्रा में वह जितनी मात्र कहता है, उसी संख्या अथवा संख्या विभाग के नाम से उस लयकारी को पुकारा जाता है। नीचे कुछ मुख्य लयकारियों का नामकरण समझाया जाता है:—

(१) १ में १ :—एक मात्रा मे एक मात्रा बोलना ही ठाहलय अथवा बराबरी की लय है।

(२) २ में १ :—२ मात्राओं में बोली गई १ मात्रा।

$$\therefore \text{ १ मात्रा में बोली जायगी } \frac{१ \times १}{२} = \frac{१}{२} \text{ मात्रा}$$

अतः इस लयकारी को आध-गुन कहेंगें।

(३) १ में २ :—एक मात्रा मे दो मात्राएँ बोलना, दो-गुन अथवा द्विगुण [दुगुन] कहलाता है।

(४) १ में ३ :—एक मात्रा मे तीन मात्राएँ – यह तिगुन लयकारी है।

(५) १ मे ४ :—एक मात्रा मे चार मात्राएँ—यह चौगुन लयकारी है।

(६) १ में ५ :—एक मे पाँच मात्राएँ—यह पँचगुन है।

(७) १ में ६ :—छः गुन

(८) १ मे ८ :—अठगुन

(९) २ मे ३ :—२ मात्रा मे बोली गई ३ मात्रायें

$$\therefore \text{ १ मात्रा मे बोली जायेंगी } \frac{३ \times १}{२} = १\frac{१}{२} \text{ मात्राएँ}$$

अतः इस लयकारी का नाम डेड़गुन है। इसी को आड़ कहते हैं। आड़ के दो अर्थ माने जाते हैं, एक तो व्यापक अर्थ दूसरा विशेष अर्थ। व्यापक अर्थ में तो किसी भी टेढ़ी चाल की लयकारी

भी आड़ कह देते हैं, उदाहरणार्थ तिगुन की चाल भी कुछ टेढ़ी होती है, अतः आज भी अनेक संगीतज्ञ तिगुन को आड़ कहते हैं। किन्तु विशेष अर्थ में आड़, डेढ़गुन को कहते हैं, जिसमें दो में तीन अथवा एक में डेढ़ मात्रा बोली जाती हैं। आड़ की लयकारी तिगुन में आधी होती है।

(१०) ३ में २:—३ मात्राओं में २ मात्रा।

∴ १ मात्रा में $\frac{२}{३}$ मात्रा।

अतः इस लयकारी को $\frac{२}{३}$ गुन अथवा दो तिहाई गुन कहेंगे।

(११) ३ में ४:—३ मात्राओं में कही गई ४ मात्राएँ।

∴ १ मात्रा में हुई $\frac{४}{३}$ = $१\frac{१}{३}$ मात्राएँ।

अतः यह लयकारी $१\frac{१}{३}$ गुन कही जायगी।

(१२) ४ में ३:—४ मात्रा में ३ मात्रा

∴ १ मात्रा मे $\frac{३}{४}$ मात्रा (पौन मात्रा)

अतः इसे $\frac{३}{४}$ अथवा पौनगुन कहेंगे।

(१३) ४ में ५:—४ मात्रा में ५ मात्रा।

∴ १ मात्रा में $\frac{५}{४}$ = $१\frac{१}{४}$ मात्रा (सवा मात्रा)

अत. इस लयकारी को सवागुन कहेंगे।

बहुत से विद्वानों ने इस लयकारी सवागुन को ही कुआड़ कहा है। कुआड़ के विषय में कुछ मतभेद है। एक अन्य मत यह है कि आड़ की आड़ को कुआड़ कहते हैं। दुगुन की दुगुन, चौगुन होती है, तिगुन की तिगुन, नौगुन होती है अर्थात् एक मात्रा में जितनी मात्रायें किसी लयकारी में बोली जाती हों, उसको उसी से गुणा कर दिया जाता है। दुगुन का अर्थ है एक मात्रा में दो मात्रा—दुगुन की दुगुन में १ बोली जायँगी २ × २ = ४ मात्रायें। तिगुन में एक

मात्रा में ३ मात्राएँ होती है। अतः तिगुन की तिगुन में १ मात्रा में ३×३=९ मात्रायें होंगी। इसी प्रकार आड़ अथवा डेढ़गुन में १ में $\frac{३}{२}$ मात्रा आती हैं अतः आड़ की आड़ में $\frac{३}{२}$×$\frac{३}{२}$=$\frac{९}{४}$ मात्रायें आयेंगी, जिसका अर्थ हुआ, कुआड़ में १ मात्रा में $\frac{९}{४}$ मात्रा अर्थात् ४ मात्रा में ९ मात्रा बोलना।

(१४) ५ में ४:—५ मात्रा मे ४ मात्रा।

१ मात्रा मे $\frac{४}{५}$ मात्रा।

अतः यह $\frac{४}{५}$ गुन की लायकारी होगी।

इसी प्रकार किसी भी लयकारी का नामकरण हो सकता है, और इसको समझा जा सकता है।

अब नीचे इन विविध लयकारियों को लिखने तथा उसकी सहायता से क्रियात्मक संगीत में व्यवहार करने की विधि बताई जाती है:—

(१ ठाह लयकारी लिखने में केवल अलग-अलग अंकों को लिख देना पड़ता है, जैसे :—

१ २ ३ ४

यहाँ प्रत्येक अंक एक-एक मात्रा का है।

(२) आधी-गुन की लयकारी में एक अंक को दो-मात्राओं तक बोलेंगे। ताल-लिपि में एक मात्रा बढ़ाने का चिन्ह "—" है। यदि सा पर दो मात्रा रुकना होगा, तो सा के बाद ऐसा चिह्न एक लगाया जायगा [सा—] इसी प्रकार यदि अंकों की सहायता से अधगुन दिखानी होगी, तो इस प्रकार लिखेंगे :—

१ — २ — ३ — ४ —

(३) दुगुन में एक मात्रा के भीतर दो मात्राएँ एक-एक मात्रा के दो स्वर या दो अंक कहे जायँगे। इसके लिए छोटा कोष्ठक

प्रयुक्त होता है जैसे मा और रे को यदि एक मात्रा में लिखना होगा तो ऐसे लिखेंगे मा रे। इसी प्रकार अंकों द्वारा दुगुन की लयकारी इस प्रकार दिखाई जायगी :—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

(४) तिगुन में एक कोष्ठक मे तीन-तीन अंक लिखे जायेंगे। जैसे :— १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६

(५) चौगुन में एक मात्रा में चार अंक होंगे अतः एक कोष्ठक में चार अंक लिखे जायेंगे :—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

इसी प्रकार पंचगुन, छःगुन और अठगुन लयकारियाँ भी लिखी जा सकती हैं। एक कोष्ठक के सभी स्वर एक मात्रा के भीतर बराबर बराबर मात्रा-विभाग के साथ बोले जाते हैं।

(६) अब उन लयकारियों को लिखना है जिनमें १ से अधिक मात्रा में कुछ मात्राएँ बोलनी हों उदाहरणार्थ २ मात्रा में ३ मात्रा बोलने से डेढ़गुन अथवा आड़ होती है। इस प्रकार की लायकारी लिखने का एक सरल नियम यह है :—

आड़ :—"बोलना है २ मात्रा मे ३ मात्राएँ।

(अ) पहले जितनी मात्राएँ बोलनी हैं [अर्थात् ३], उन्हे थोड़ी थोड़ी दूरी पर लिख लीजिए, जैसे १ २ ३

(ब) फिर जितनी मात्राएँ बोलनी हैं [अर्थात् २], उतने ही भाग ऊपर लिखी प्रत्येक मात्रा का बना लीजिए—अर्थात् प्रत्येक अंक के आगे एक-एक अवग्रह जोड़ दीजिए, जैसे :—

१ ऽ २ ऽ ३ ऽ

(यहाँ प्रत्येक के दो-दो भाग बन गए। तीन भाग बनाने के

लिए दो अवग्रह जोड़ने पड़ेंगे और चार भाग बनाने के लिए तीन अवग्रह, आदि)।

(स) अब जितनी मात्राएँ बोलनी थीं [अर्थात् ३], उतने विभागों को एक-एक मात्रा में कोष्ठक द्वारा रख दीजिए, अर्थात् ३ मात्राएँ बोलनी थीं अतः तिगुन की लयकारी में सब विभागों को विभाजित कर दीजिए, जैसे।

१ ऽ २ ऽ ३ ऽ

बस यह डेढ़गुन अथवा आड़ लिख गई। इसे देखकर हाथ पर प्रत्येक मात्रा पर ताली देते हुए १ ऽ २ प्रथम मात्रा में और ऽ ३ ऽ दूसरी मात्रा में बोला जा सकता है।

यदि किसी ताल के ठेके की आड़ लिखनी हो, तो भी यही विधि अपनाई जायगी। पहले उस ठेके के प्रत्येक मात्रा के वर्णों को अलग-अलग थोड़ी थोड़ी दूर पर लिख लेंगे, फिर प्रत्येक वर्ण के [अर्थात् प्रत्येक मात्रा के] आगे एक अवग्रह जोड़कर उसके दो-दो विभाग बना लेंगे और अंत में तीन-तीन विभागों को एक २ मात्रा [अथवा कोष्ठक] के भीतर रख देंगे। जैसे एकताल की आड़ इस प्रकार लिखेंगे :—

[अ] पहले उसके बोल एक-एक मात्रा पृथक दिखाते हुए लिखेंगे :—

धिं धिं तागे तृक तू ना क त्ता धागे तृक धी ना

[ब] फिर प्रत्येक के दो-दो भाग बनायेंगे :—धागे के दो विभाग अवग्रह जोड़कर नहीं वरन धा और गे को ही अलग-अलग करके बना दिए जायेंगे। अन्य एक-एक मात्रा के पूरे वर्णों के आगे अवग्रह जोड़ेंगे :—

धिं ऽ धिं ऽ धा गे तृ क तू ऽ ना ऽ क ऽ त्ता ऽ धा गे तृ क धी ऽ ना ऽ

[ख] अब, तीन तीन विभागों को एक-एक कोष्ठक द्वारा एक-एक मात्रा में बाँट देंगे :—

धि ऽ धि ऽ धा गे तू क तू ऽ ना ऽ क ऽ त्ता ऽ धा गे
तू क धी ऽ ना ऽ

यदि एक ताल की आड़ एक ही बार में बोल कर सम पर आना हो, तो ऊपर लिखी पंक्ति में अंतिम कोष्ठक अथवा अंतिम मात्रा को १२ वीं मात्रा मानकर उससे पूर्व की मात्राओं को उल्टा गिनते हुए एक ताल के अनुसार दो-दो मात्राओं के विभाग बना दिये जायँगे और फिर ताली खाली आदि के चिह्न भी अंत से पीछे मात्रा गिनकर ही लगा दिये जायँगे, जैसे :—

धि ऽ धि ऽ धा गे | तू क तू ऽ ना ऽ | क ऽ त्ता ऽ धा गे |
२ | ० | ३ |
तू क धी ऽ ना ऽ |
४

यह एक ताल की पूर्ण ताल लिपि में लिखी डेढ़गुन या आड़ हुई। इस प्रकार की आड़ आदि लिखने में एक-एक मात्रा के कोष्ठक भी अन्त से ही लगाना आरम्भ होना चाहिये और अंत से ही विभाग बनाकर ताली आदि के चिह्न लगाने चाहिये क्योंकि अंतिम मात्रा के बाद सम का आना निश्चित है अन्तिम मात्रा किस ताल में कौन सी होती है यह पता रहता ही है। कुछ तालों की आड़ आदि में प्रारम्भ के कुछ वर्ण पूरे कोष्ठक में नहीं आते जैसे तीवरा की आड़ में :—

१ धा ऽ | दिं ऽ ता ऽ कि ट | त क ग दिगन |
| २ | ३ |

अंत में विभाग बनाते हुए पीछे लौटने पर प्रथम कोष्टक के लिये केवल दो ही विभाग धा ऽ बचे। अतः १ अंक लिखकर कोष्ठक की मात्रा पूरी कर दी गई। तीवरा की आड़ इस प्रकार दूसरी मात्रा के बाद तीसरी मात्रा के १/३ भाग के बाद आरम्भ होगी, क्योंकि ऊपर लिखी आड़ से स्पष्ट है कि दूसरी ताली पड़ती है ४ थी मात्रा पर, अतः प्रथम कोष्टक १ धा ऽ तीसरी मात्रा का हुआ। इसलिए आड़ दो पूरी मात्रा और तीसरी मात्रा के तीन भागों में से एक भाग छोड़कर, आरम्भ होती है। अर्थात् तीवरा की आड़ २⅓ मात्रा बाद आरम्भ होती है। इसी प्रकार ऊपर एक ताल की आड़ ४ मात्रा बाद अथवा ५ वीं मात्रा से प्रारम्भ होती है। इस प्रकार तालों की या गीतों की आड़ लिखकर प्रत्येक मात्रा में लिखे हुये अक्षर बोलकर अभ्यास करने से हम सरलतापूर्वक आड़ लय दिखाने में दक्ष हो सकते हैं। यही बात प्रत्येक लयकारी में है।

(७) ⅔ गुन की लयकारी में ३ मात्रा में २ मात्रा बोली जायेंगी। पूर्व नियमानुसार, पहले दो अंक लिखकर प्रत्येक के ३-३ विभाग बनायेंगे, जिसके लिए प्रत्येक अङ्क के आगे दो दो अवग्रह जोड़ने पड़ेंगे। फिर २ मात्राएँ बोलनी हैं, अतः दुगुन की लयकारी बनाकर २-२ विभागों को एक-एक मात्रा में (कोष्ठक में) रख देंगे :—

१ऽ ऽ२ ऽऽ

इस प्रकार ३ मात्राओं के भीतर २ मात्राएँ बोली गईं। किसी ठेके की ⅔ गुन भी, प्रत्येक मात्रा के वर्ण के आगे दो अवग्रह जोड़ कर इसी प्रकार दो-दो भागों को एक-एक मात्रा में दिखाकर, लिखी जा सकती है और लिखकर उसे बोलने का अभ्यास किया जा सकता है।

(८) पौनगुन में ४ मात्राओं में ३ मात्राएँ बोली जाती हैं, अतः पौनगुन लिखने में पहले तीन अंक लिखे जायेंगे। फिर प्रत्येक के आगे ३-३ अवग्रह जोड़कर उसके ४-४ विभाग बनाए जावेंगे। अन्त में तिगुन की लयकारी में अर्थात् तीन-तीन विभाग एक-एक मात्रा में रख दिये जायेंगे :—

१ऽऽऽ२ऽऽऽ३ ऽऽऽ

यदि झपताल की पौनगुन लिखनी हो, तो प्रत्येक मात्रा के ४-४ विभाग करेंगे अर्थात् ३—३ अवग्रह जोड़ेंगे, फिर तीन तीन विभागों को एक मात्रा में कर देंगे, किन्तु यह कोष्ठक लगाने की क्रिया को अन्त से आरम्भ करके पीछे तक लावेंगे :—

१२धी| ऽऽऽ ना ऽऽ ऽधी ऽऽ ऽधी ऽऽऽ | ना ऽऽ
| ३ | × | २

ऽती ऽ ऽऽना | ऽऽऽ धी ऽऽ | ऽधी ऽऽ ऽना ऽऽऽ |
| ० | ३

प्रथम कोष्ठक को १ = जोड़कर पूरा किया गया। विभाग आदि पीछे से गिने गए। प्रथम कोष्ठक की मात्रा ७ वीं है क्योंकि उसके बाद की ८ वीं मात्रा पर ३ री ताली पड़ी है। अतः झपताल की पौनगुन छठी मात्रा के बाद ७ वीं मात्रा में $\frac{3}{4}$ छोड़कर अर्थात् ६$\frac{3}{4}$ मात्रा बाद में आरम्भ होगी।

(९) सवा गुन में ४ मात्रा में ५ मात्राएँ बोली जाती हैं :—

१ऽऽऽ२ऽऽऽ३ऽऽऽ४ऽऽऽ५ऽऽऽ

(१०) डे गुन में ४ में ५ मात्राएँ बोली जायेंगी :—

१ऽऽऽऽ२ऽऽऽऽ३ऽऽऽऽ४ऽऽऽऽ

इसी विधि से हम किसी भी लयकारी को लिख सकते हैं और

उसकी सहायता से उसी लयकारी में ताली देकर ठेकों को भी बोल सकते हैं तथा गीत भी गा सकते हैं।

गणित द्वारा गीतों की. दुगुन आदि के प्रारम्भिक स्थान निकालना :—

वास्तविक दुगुन आदि वे होती हैं जिनमें गीत के मुखड़े को भी लयकारी प्रारम्भ से ही बदली जाय और ऐसे स्थान से वह आरम्भ की जाय की एक ही बार में पूर्ण गीत उस लयकारी में बोलकर ठीक सम पर गीत की सम आ जाय। इस प्रकार की दुगुनादि के प्रारम्भिक स्थान निकालने की विधि नीचे दी जाती है :—

उदाहरण (१)

मान लीजिए एक धमार के गीत की स्थायी तीन आवर्त की है और वह गीत तीसरी ताली से प्रारम्भ होती है अर्थात् उसका मुखड़ा चार मात्रा का है। (क्योंकि तीसरी ताली ११ वी मात्रा पर पड़ती है इसलिए मुखड़ा ११ वीं से १४ वीं मात्रा तक का अर्थात् ४ मात्राओं का हुआ)। उसकी दुगुन कहाँ से प्रारम्भ हो यह निकालना है।

(१) पहले यह पता चलाना होगा कि कुल कितनी मात्राओं के दुगुन होती है :—

स्थायी ३ आवर्त की है अर्थात मात्रा १४×३=४२ है मुखड़ा ४ मात्रा का है।

∴ दुगुन ४२+४=४६ मात्राओं की होनी है।

(२) ४६ मात्राओं की दुगुन होगी ४६/२ =२३ मात्राओं में
= १ आवर्त+६ मात्राओं में।

(क्योंकि धमार का एक आवर्त १४ मात्रा का होता है।)

(३) इसलिए दुगुन ऐसे स्थान से प्रारम्भ होना चाहिये कि जिससे उस आवर्त में ६ मात्राएँ मिल जायें और दूसरा पूरा आवर्त लगा कर सम पर गीत की भी सम आ जाय। अर्थात् १४—६=५ मात्रा बाद दुगुन आरम्भ होगी तभी उस आवर्त में बाकी ६ मात्राएँ मिल सकेंगी "५ मात्रा बाद" का वही अर्थ है "जो ६ ठी मात्रा से" का अर्थ होता है।

५ मात्रा | ६/मात्रा ←— १ आवर्त—→

सम ↓ ६ ठी मात्रा सम सम

सम से ५ मात्रा बाद अर्थात् छठी मात्रा से आरम्भ करने पर दुगुन के लिए पूरी ६ मात्रा इस आवर्त की और बाद को एक पूरा आवर्त मिल जायगा।

उदाहरण (२)

उक्त धमार की स्थायी की ही यदि तिगुन निकालनी होगी, तो मात्राओं को ३ से भाग देंगे। भाग देकर जो आयेगा, उसमें देखेंगे कि पूरे आवर्त कितने हैं और शेष कितनी मात्राएँ बचती हैं। उन्हें १४ में से घटा कर जो आयगा, वही उत्तर होगा अर्थात् उतनी ही मात्राओं के बाद तिगुन प्रारम्भ होगी। स्थायी मे मात्राएँ हैं=४२

मुखड़ा है———→४ मात्राओं का

∴तिगुन करनी है कुल→४६ मात्राओं की।

∴४६ मात्राओं की तिगुन होगी $\frac{४६}{३}$=१५$\frac{१}{३}$ मात्राओं में।

१५$\frac{१}{३}$ मात्रा=१ आवर्त+१$\frac{१}{३}$ मात्रा।

∴स्थायी की तिगुन प्रारम्भ होगी १४—१$\frac{१}{३}$

=१२$\frac{२}{३}$ मात्राओं के बाद

उदाहरण (३)

उपरोक्त धमार की स्थायी की चौगुन होगी $\frac{४६}{४}$ = ११$\frac{३}{४}$ मात्रा में इसमें पूरा आवर्त कोई नहीं है। अतः इन्हीं मात्राओं को १४ में से घटा देंगे-अर्थात् चौगुन १४ − ११$\frac{३}{४}$ = २$\frac{३}{४}$ मात्राओं के बाद प्रारम्भ होगी।

उदाहरण (४)

एक चारताल के ध्रुपद की स्थायी दूसरी खाली से आरम्भ होती है और कुल ४ आवर्त की है। उसकी तिगुन और आड़ कहाँ से प्रारम्भ होगी ?

चारताल में दूसरी खाली ७ वीं मात्रा पर पड़ती है, इसलिए ७, ८, ९, १०, ११, १२ अर्थात् कुल ६ मात्राओं का मुखड़ा है और चारताल के चार आवर्त होते हैं १२ × ४ = ४८ मात्राओं के।

अतः ४ आवर्त और मुखड़ा मिलाकर कुल ४८ + ६ = ५४ मात्राओं की तिगुन और आड़ करनी है।

५४ मात्राओं की तिगुन होगी $\frac{५४}{३}$ = १८ मात्रा में = १ आवर्त
+ ६ मात्रा में

∴ उस ध्रुपद की स्थायी की तिगुन प्रारम्भ होगी १२ — ६
= ६ मात्राओं के बाद
अर्थात् ७ वीं मात्रा से।

५४ मात्राओं की आड़ करने के लिए, जैसे कि हम पहले देख चुके हैं, प्रत्येक मात्रा के दो-दो विभाग करने पड़ते हैं, ५४ को पहले २ से गुणा करेंगे, फिर ३ से भाग देंगे अर्थात् $\frac{५४ \times २}{३} = \frac{१०८}{३}$

३६ मात्राओं में आड़ होगी।

३६ मात्रा = ३ आवर्त पूरे पूरे।

इसलिए उस ध्रुपद की स्थायी का आड़ ठीक सम से आरम्भ होगी।

बहुत से गायक किसी सरल मात्रा, सम, ताली अथवा खाली से दुगुन आदि प्रारम्भ कर देते हैं और अंत में आवश्यकतानुसार मुखड़े को दो अथवा तीन बार बोलकर सम पकड़ते हैं। ऊपर दिये हुए नियम से हम किसी गीत की दुगुन आदि के अंत में जिस तरह की तिहाई चाहें जोड़कर प्रारम्भिक स्थान निकाल सकते हैं। तिहाई में कितनी कुल मात्राएँ लगेंगी, इसे जोड़कर; तब पूर्ववत् हिसाब लगाया जायगा।

ताली के ठेकों की दुगुनादि के प्रारम्भिक स्थान भी इसी नियम से निकाले जा सकते हैं, जैसे झपताल की तिगुन के लिये १० को ३ से भाग देंगे। $\frac{१०}{३}$ = ३$\frac{१}{३}$ फिर इसे १० में से घटायेंगे :—१०—३$\frac{१}{३}$ = ६$\frac{२}{३}$। अतः झपताल की तिगुन ६$\frac{२}{३}$ मात्रा बाद आरम्भ होगी, यदि एक ही बार में सम पर आना हो।

किन्तु अधिकतर ठेकों की दुगुन आदि सम से ही आरम्भ करने में विद्यार्थियों को सुविधा होती है। उस दशा में दुगुन को दो बार पूरा बोलने से, तिगुन को तीन बार चौगुन को चार बार बोलने से सम तक ठीक १ आवर्त में दुगुन, तिगुन चौगुन बनेगी। आड़ के लिए २ आवर्त में ३ बार पूरे ठेके को सम से प्रारम्भ करके बोलना होगा जैसे :—

झपताल की आड़ सम से प्रारम्भ करके :—

धीऽना ऽधीऽ	धीऽना ऽतीऽ नाऽधी
×	२
ऽधीऽ नाऽधी	ऽनाऽ धीऽधी ऽनाऽ
०	३

ती ऽ ना	ऽ धी ऽ	धी ऽ ना	ऽ धी ऽ	ना ऽ धी
×		२		
ऽ धी ऽ	ना ऽ ती	ऽ ना ऽ	धी ऽ धी	ऽ ना ऽ
०		३		

गीतों की दुगुनादि को स्वर-ताल-लिपि में लिखना :—

जो विद्यार्थी गणित में कच्चे हैं, वे गीत के बोलों की दुगुनादि ताल-लिपि में लिखकर स्वयं प्रारम्भिक स्थान पता चला सकते हैं। उदाहरणार्थ धमार का एक गीत जौनपुरी राग में है, "ए री ए में कैसे"। उसकी प्रत्येक मात्रा को पहले अलग-अलग लिखेंगे, फिर अंत से दो-दो को एक-एक मात्रा में करते जायेंगे, यदि दुगुन लिखनी होगी। तीन-तीन को एक-एक में करेंगे यदि तिगुन लिखनी होगी, चार-चार को एक-एक में करेंगे यदि चौगुन लिखनी होगी और आड़ के लिए, जैसा पहले बताया गया है, प्रत्येक मात्रा के आगे एक-एक अवग्रह जोड़कर फिर अंत से तीन-तीन विभागों को एक-एक मात्रा में बनाते जायेंगे, बाद में अंत से तालानुसार, विभाग, ताली खाली सम आदि दिखाये जायेंगे। इस तरह प्रारम्भिक मात्रा स्वतः पता चल जायगी। जौनपुरी के धमार की स्थाई की तिगुन नीचे लिखी जाती है :—

१॰ ए	री ए में	कै ऽ ऽ से ऽ ऽ	भ र न	ऽ जा ऽ	कूँ ऽ प
		×			
नि ऽ या	ऽ म ग	रो ऽ ऽ	ऽ ऽ क	त हो री	ऽ के ऽ
२		०			३
ऽ से लै	ऽ या ए	री ए में			
३					

इसमें प्रथम कोष्ठक १२ वीं मात्रा का है। इसलिए इस धमार की तिगुन १२⅔ मात्रा बाद आरम्भ होगी। गणित से भी यही उत्तर आयगा। ३ आवर्त की स्थायी और ४ मात्राओं का मुखड़ा मिलाकर कुल ४६ मात्रायें हैं जिनकी तिगुन ४६/३ = १५⅓ मात्राओं में होगी अर्थात् १ आवर्त + १⅓ मात्रा में होगी अर्थात् वह आरम्भ होगी १४ − १⅓ = मात्रा बाद।

यदि स्वर लिपि लिखनी होगी, तो ऊपर लिखे धमार की स्थायी के प्रत्येक अक्षर के ऊपर स्वर जोड़ दिये जायेंगे। अवग्रह के ऊपर उच्चारण चिह्न "—" लगाया जायगा। यदि कहीं आधी-आधी मात्रा दिखानी पड़े, तो आधी-आधी वाले अक्षरों को एक छोटे कोष्ठ में अलग लिखकर नीचे बड़े कोष्ठ का प्रयोग होगा।

उदाहरणार्थ यदि एक गीतांश 'भरन जाऊँ' में "जा" का सरगम पध मप है, तो तिगुन में इस प्रकार लिखेंगे :—

प ध म -पध मप ग-ग......

भ र न ऽ जाऽ ऽऽ ऊँ ऽप

कुछ कठिन तालों का विवरण

झूमरा ताल

(मात्रा १४, विभाग ४, ताली १-४-११, खाली ८)

मात्रा	१ २ ३	४ ५ ६ ७	८ ९ १०	११ १२ १३ १४
ठेका	धधातिरकिट	धिंधिंधगे तिरकिट	तितातिरकिट	धिंधिंधागे तिरकिट
ताल चिह्न	×	२	०	३

अथवा

घि ऽधा तिरकिट	घिघि धागे तिरकिट	तिं ऽता तिरकिट
×	२	०

घिघि धागे तिरकिट
३

आड़ा चार ताल

(मात्रा १४, विभाग ७, ताली १-३-७-११, खाली ५, ६, १३)

मात्रा	१ २	३ ४	५ ६	७ ८	६ १०	११ १२	१३ १४
ठेका	घिं तिरकिट	धी ना	तू ना	कत्ता तिरकिट	धी ना	धी धी	ना
ताल चिह्न	×	२	०	३	०	४	•

गजझंपा ताल (मात्रा १५)

१ २ ३ ४	५ ६ ७ ८	६ १० ११	१२ १३ १४ १५
धा धिन नक तक	धा धिन नक तक	तिन नक तक	तिट कत गदि गन
×	२	०	३

मत्त ताल (मात्रा १८)

(नोट :-कुछ विद्वान् ६ मात्राओं के मत्त ताल का प्रयोग करते है।)

१ २	३ ४	५ ६	७ ८	६ १०	११ १२	१३ १४	१५ १६	१७ १८
धा ऽ	धि ड़	न क	धि ड़	न क	ति ट	क त	ग दि	ग न
×	०	२	३	०	४	५	६	०

शिखर ताल (मात्रा १७)

१ २ ३ ४	५ ६ ७ ८	६ १० ११	१२ १३
धा तृक धिन नक	थु गा धिन नक	धुम किट तक	धेत् धा
×	२	०	३

४ •

१४	१५	१६	१७
तिट	कत	गदि	गन
४			

रूपक ताल (विलम्बित ख्यालों के योग्य ठेका)

१	२	३	४	५	६	७
धिं	धागे	तिरकिट	धिं	धिं	धागे	तिरकिट
×			२		३	

म्हलफाक ताल (ख्याल गायकी के लिये)

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
धिं	धिं	ता	तिरकिट	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	ती	ना
×		०		२		३		०	

सवारी ताल (१५ मात्रा की पंचम सवारी ख्याल के लिए)

१ २ ३ ४	५ ६ ७	८ ९ १० ११	१२ १३ १४ १५
धा धिंधिं धा	धिं धिं. धा	दीं ऽग डि ना	त्त धिन कधि नक
×	२	०	३

नोट :—टप्पा और ठुमरी के ठेके को प्रथम भाग में दिया जा चुका है।

तृतीय अध्याय

गमक

प्राचीन अथवा मध्यकाल में गमक, एक विशेष प्रकार के स्वरों के कंपन को कहते थे जिससे श्रोताओं का चित्त प्रसन्न होता है :—

"स्वरस्य कंपो गमकः श्रोतृ चित्त सुखावहः"

आधुनिक दक्षिण-भारतीय अथवा कर्नाटक संगीत में भी गमक का यही स्वरूप स्वीकार किया जा रहा है। शास्त्रों में गमक के निम्नलिखित मुख्य १५ प्रकार मिलते हैं :—

(१) कंपित (२) आंदोलित (३) आहत (४) प्लावित (५) उल्हासित (६) स्फुरित (७) त्रिभिन्न (८) बली (९) हुंफित (१०) लीन (११) तिरिप (१२) मुद्रित (१३) कुरुला (१४) नामित और (१५) मिश्रित, कर्नाटक संगीत में इनमें से अनेक गमकों का प्रयोग आज भी मिलता है और वह गमक के नाम से ही होता है, किन्तु उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में 'गमक' शब्द का प्रयोग इस अर्थ में नहीं होता, यद्यपि उपरोक्त लगभग सभी प्रकार की गमक हमारे गायन तथा वाद्य-संगीत में किसी न किसी रूप में अवश्य प्रयुक्त होती हैं अंतर केवल यह है कि हम उन सौंदर्य-उत्पादक विशिष्ट स्वर-कंपनों को गमक कहकर नहीं पुकारते, वरन् उनके कुछ पृथक और स्वतन्त्र नाम रख लिए हैं जैसे—खटका, मुर्की, गिटकिड़ी, जमजमा, मीड़ आदि। साथ ही साथ यह भी एक महत्व की बात है कि आज हम 'गमक' शब्द का प्रयोग भिन्न अर्थ में करने लगे हैं—हृदय से ज़ोर लगाकर गंभीरतापूर्वक उच्चारण करके जो तान

या स्वर-प्रयोग किया जाता है उसे हिन्दुस्तानी संगीत में गमक कहते हैं। वास्तव में गमक की शास्त्रीय व्याख्या ही माननीय है और उसके अनेक प्रकारों में ही हिन्दुस्तानी संगीत की आधुनिक गमक को भी एक प्रकार मानना अच्छा होगा।

प्राचीन १५ गमकों में से कुछ मुख्य गमकों का स्वरूप नीचे दिया जाता है —

(१) कंपित गमक :—वीणा अथवा सितार में एक ही बार में शीघ्रता से दो स्वरों पर अँगुली के हनन से कंपित गमक उत्पन्न होती है। यदि बायें हाथ की मध्यमांगुलि ऋषभ के पर्दे पर और तर्जनी षड्ज के पर्दे पर रखकर दाहिने हाथ से दा बजायें और बजाने के बाद तुरन्त मध्यमांगुलि को झटके के साथ तार हटा लें, तो मिजराब से एक प्रहार में दो स्वर रे और सा शीघ्रता सहित उत्पन्न होंगे। यही जमजमा है (^रे^सा), सितार-वादन के क्षेत्र में आज इस जमजमे का खूब प्रयोग होता है। इस प्रकार के अलंकारिक अथवा स्पर्श स्वर का स्पर्श देते हुए किसी मूल स्वर के बजाने को गायन में खटका कहते हैं, जमजमा और खटके में पीछे और आगे दोनों के स्वरों का स्पर्श (कण अथवा अलंकारिक स्वर) दिया जाता है (^रे^सा या सा^नी^)

किंतु आजकल उत्तर भारत में जमजमा के अर्थ में कंपित गमक को नहीं स्वीकार किया जाता, आजकल कंपित गमक का तात्पर्य किसी स्वर पर अँगुली को कंपाने से है, जैसे (सा आ आ आ, ग आ आ आ)। गायन में आवाज कँपाकर यह गमक उत्पन्न हो सकती है

(२) स्फुरित गमक :—वीणा अथवा सितार के तार पर बार-बार दो स्वरों पर हनन करने से स्फुरित गमक बनती है अर्थात् ऊपर वर्णित कंपित गमक को एक से अधिक बार शीघ्रता से बजाकर

स्फुरित गमक उत्पन्न होती है (रेसा रेसा आदि)। इस अर्थ का क्षेत्र अब बढ़ा दिया गया है और आज वादन के क्षेत्र में स्फुरित का अर्थ, आगे-पीछे के स्वरों का झटका देते हुए मूल स्वर को मिश्रित रूप बनाकर उत्पन्न करना है। इस अर्थ के अनुसार स्फुरित गमक में मिजराब के एक ही प्रहार से दो-तीन अथवा चार स्वर एक साथ शीघ्रतापूर्वक बजाये जा सकते हैं, जिसके आधार पर आज स्फुरित गमक के ही तीन भेद अथवा प्रकार माने जाते हैं :—

(अ) जमजमा (रेसा अर्थात् मिजराब के एक प्रहार से शीघ्रता से दो स्वर बजाना) (ब) मुर्की (रेसानी अर्थात् एक मिजराब में तीन स्वर बजाना। मुर्की में जमजमा बजाने के बाद तुरन्त तर्जन अँगुली को सा से नी के पड़दे पर फिसला देते हैं) (स) गिटकिड़ी (रेसानीसा या (सा)→अर्थात् एक मिजराब में चार स्वर शीघ्रता से बजाना। मुर्की बजाने के बाद तुरन्त मध्यांगुलि को फिर सा के पड़दे पर झटके से रखने से रेसानी के बाद सा बच जाता है और इस प्रकार एक प्रकार में रेसानीसा शीघ्रता के साथ उत्पन्न हो जाता है।)

कभी-कभी मुर्की अथवा जमजमा व्यापक अर्थ में भी प्रयुक्त होते हैं जैसे किसी भी एक से अधिक स्वरों के समूह को शीघ्रता के साथ एक मिजराब में उत्पन्न करने को मुर्की कह देते हैं। गायन में भी 'मुर्की' शब्द का प्रयोग होता है और वह भी व्यापक अर्थ में गायन में दो स्वरों के झटके के साथ प्रयोग, जिसमें एक स्वर कण-रूप में लगे, खटका कहलाता है, और दो से अधिक स्वरों का शीघ्र प्रयोग मुर्की कहलाता है जैसे, रेसा नी, (सा), प (प) मपधमप इत्यादि।

(३) आहत गमक—आहत गमक उसको कहते हैं जिसमें आगे पीछे से अलंकारिक स्वर का झटका लगाकर मूलस्वर का उच्चारण हो (म र, ग रे)। गायन में जो खटका कहलाता है, वही वास्तव में आहत गमक का एक मुख्य रूप है जमजमा भी इसी के समान ऊपर बताया गया है परन्तु भेद यह कि जमजमे में गम्भीर झटका नहीं होता। आहत गमक में झटका जोर से देकर उसको पृथक भाव दिखलाया जाता है। यदि एक पड़दे पर ही गम्भीरता से नी सा बजायें (नी के पडदे पर तार खींचकर), तो आहत गमक उत्पन्न होगी और यदि नी और सा दोनों पडदों पर एक मिजराब से शीघ्रता के साथ नी सा बजायें [बिना कहीं तार को खींचे] तो जमजमा उत्पन्न होगा। शास्त्रों में आहत गमक के भी अन्य अनेक प्रकार प्रत्याहत, द्विराहत आदि मिलते हैं।

(४) आदोलित गमक —आगे अथवा पीछे के स्वरों की सहायता से किसी स्वर को झूले की भांति आदोलन करते हुए हिलाने को आदोलित गमक कहते हैं। इसमें भी कण अथवा स्पर्श स्वर हैं पर आदोलन में मींड का कुछ भाव रहने के कारण आदोलित गमक जमजमा आदि से भिन्न हो जाती है (म ग मग मग म)

(५) प्लावित गमक —ध्वनि को खंडित न करके किसी एक स्वर से किसी अन्य स्वर तक आकर्षण से जाने को प्लावित गमक कहते हैं। इसी को आजकल उत्तर भारत में मींड कहते हैं। एक स्वर से दूसरे स्वर तक घर्षण द्वारा अथवा आवाज मिलाते हुए जाना ही मींड है। [प ग]। गायन में भी 'मींड' शब्द का प्रयोग होता है, जिसे कभी-कभी 'लचक' भी कहते हैं। सितार, वीणा आदि में एक ही पडदे पर तार को खींचकर मींड उत्पन्न होती है

रवा बेला और मारङ्गी आदि गज से बजाये जाने वाले वाद्यों में तार खींचा नहीं जाता और न उसमें पड़दे होते हैं। अतः इन वाद्यों मे तार पर अंगुली को एक स्वर से किसी भी दूसरे स्वर तक घसीट कर जाने से मींड निकल आती है परन्तु इन वाद्यों मे इस मींड को सूत या घसीट कहकर पुकारते हैं 'घसीट' शब्द का प्रयोग कभी-कभी सितार में भी होता है—एक स्वर से अन्य किसी स्वर तक के बीच के स्वर छुआते हुए तेजी से अगुली घसीट कर जाने को घसीट कहते हैं। मीड एक ही पड़दे पर तार खींचकर निकलती है और घसीट में तार नहीं खींचा जाता।

(३) उल्हासित गमक :—इसमे प्रत्येक स्वर क्रम से नीचे से ऊपर या ऊपर से नीचे तक हिलता हुआ जाता है, जैसे सा रे सा रेसा रे म रे म रे म प म प म आदि। इसको गदगदीत गमक भी कहते हैं।

(७) विभिन्न गमक :—तीनो सप्तकों में समान स्वरों को शीघ्रता से बजाना, त्रिभिन्न गमक कहलाता है, जैसे रेसां, रेसा, रे, सा आदि।

(८) तिरिप गमक :—तिरिप गमक में द्रुतलय की मात्रा के चतुर्थांश में स्वरों का प्रयोग होता है।

(६) वली गमक :—इस गमक मे स्वरों का चक्राकार रूप में फिराया जाता है, जैसे रेसानीसा गरेसारे आदि।

(७) हुम्फित गमक :—हिन्दुस्तानी संगीत मे कोई स्वर खड़ा नहीं लगता, उसे किसी न किसी अन्य श्रुति अथवा स्वर का स्पर्श स्वतः प्राप्त हो जाता है, वह चाहे स्पष्ट न हो। स्पष्ट, होने से तो वह जमजमा हो सकता है पर जो स्वर या श्रुति राग मे वर्जित हैं

उनका स्पर्श स्वतः सुन्दर रूप में हो जाता है। इस प्रकार दी श्रुतियों में भली भाँति व्यापक होकर स्वरों का सुडौल चढ़ाव उतार कुम्पित गमक कहलाता है।

इसी प्रकार अन्य गमकों की व्याख्या भी शास्त्रों में मिलती अवश्य है किन्तु उन व्याख्याओं अथवा परिभाषाओं से उनका स्पष्ट अर्थ नहीं निकलता। कुम्पित गमक का भी भाव स्पष्ट नहीं पता चलता।

उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में 'गमक' का प्रयोग केवल हृदय से जोर लगाकर गंभीर स्वर-उत्पादन के अर्थ में होता है और यह गमक मींड, खटके, मुर्कियों आदि से भिन्न होती है। ध्रुपद गायन में गमक का प्रयोग होता है, नोम् तोम के अलाप में भी अन्तिम भाग में द्रुतलय में गमक युक्त तानें ली जाती हैं। ख्याल गायन में भी कभी-कभी गमक की तानें प्रयुक्त होती हैं।

स्पर्श स्वर अथवा कण या अलंकारिक स्वर किसे कहते हैं, यह पिछले भाग में समझाया जा चुका है। मूल स्वर को गाते बजाते समय जिस अन्य स्वर का स्पर्श किया जाता है वही कण स्वर कहा जाता है। यह कण दो प्रकार का होता—(१) एक तो पूर्व लगन कण जैसे $^{रे}$सा जिसमें प्रथम रे का स्पर्श देकर तब मूल स्वर सा कहा जाता है और (२) दूसरा अनु लगन कण जैसे सा$^{रे}$ जिसमें मूल स्वर पहले कहकर उसकी समाप्ति पर उसके बाद रे स्वर का स्पर्श दे दिया जाता है। अनु लगन कणों के प्रयोग से राग-विस्तार में अत्यंत रोचकता आ जाती है।

उठाव और चलन

किसी राग का गायन जिस मुख्य रागवाचक स्वर समुदाय के प्रयोग द्वारा प्रारम्भ होता है, उसे उस राग का उठाव कहते हैं।

राग के पूर्वाङ्ग और उत्तरांग के उठाव भी भिन्न व निश्चत होते हैं। कभी-कभी एक ही राग के पूर्वाङ्ग अथवा उत्तरांग के एक से अधिक प्रकार के उठाव भी मिलते हैं। उदाहरणार्थ गौड़सारंग में पूर्वाङ्ग के दो उठाव हैं—(१) सा, मग प, मप (२) सा ग रे मग प, म प। इनमें से मुख्य उठाव दूसरा है। इसके उत्तरांग के भी दो उठाव हो सकते हैं—(१) प प सां और (२) प, नीध, सां, इसी प्रकार गौड़मल्हार में सा मरे प, म प सांध सां और नी सा रेग म, मपम, मपध नी सां, ये दोनों उठाव खूब प्रयुक्त होते हैं। उठाव की सुन्दरता से एक तो राग-भ्रम नहीं होता और दूसरे उसका प्रभाव श्रोताओं पर सुन्दर पड़ता है।

राग गायन में आदि से अन्त तक अथवा राग के पूर्वाङ्ग से उत्तरांग तक उसके थाट, स्वर, वादी संवादी, विवादी, न्यास, उत्तरांग-पूर्वाङ्ग-प्राधान्य, पकड़ आदि के नियमों पर अवलंबित होकर जो अनेक प्रकार के स्वर; समुदायों द्वारा विस्तार करने की क्रिया अथवा विधि होती है, उसी को उस राग की चलन कहते हैं। "चलन" का साधारण अर्थ है "स्वर विस्तार की विधि" अर्थात् राग की चलन से यह पता चलता है कि उस राग में किस प्रकार के विस्तार करना चाहिये। प्रत्येक राग की अपनी एक स्वतंत्र चलन होती है। एक राग में अन्य रागों की चलन की छाया भले ही आ जाय किन्तु फिर भी उसकी एक स्वतंत्र चलन भी अवश्य रहती है जिसके कारण वह एक पृथक राग माना जाता है। "चलन" के अन्तर्गत पकड़, वादी-संवादी-विवादी स्वर, आरोहावरोह और न्यास के स्वरों का महत्व बहुत है।

स्थाय, मुखचालन, आक्षिप्तिका और विदारी

स्थाय—छोटे-छोटे स्वर-समुदायों का ही एक नाम स्थाय है।

मुखचालन—विविध अलंकारों और मींड़ गमक आ॰ से युक्त स्वर-विस्तार करने को मुखचालन कहते हैं।

आक्षिप्तिका—स्वर, शब्द और ताल युक्त किसी भी को आक्षिप्तिका कह सकते हैं। जितनी ख्याल, ध्रुपद, धमार की चीजें गाई जाती हैं, सभी आक्षिप्तिका की कोटि में आती हैं।

विदारी :—गीत अथवा आलाप के विभिन्न छोटे विभागों को ही विदारी कहते हैं। प्राचीन प्रबन्ध, वस्तु . . . निबद्धगानों के जो उद्ग्राह, ध्रुव, मेलापक, अंतरा और आभोग, पाँच धातु होते थे, वे भी विदारी की कोटि मे आते हैं। स्थायी अंतरा, । चारी, आभोग भाग भी विदारी हैं और अनेक छोटे उप-विभागों को भी विदारी कह सकते हैं। गीत के सभी विदारी भागों के अंतिम स्वरों को ही न्यास, अपन्यास आदि कहते हैं।

•

परमेल प्रवेशक राग

परमेल प्रवेशक राग उन्हें कहते हैं जो किसी एक मेल अथवा थाट से किसी अन्य मेल अथवा थाट में प्रवेश कराते हैं, जैसे जयजयवंती राग एक परमेल प्रवेशक राग है क्योंकि यह रात्रि के उस समय में गाया जाता है जब कि रे, ध शुद्ध वाले वर्ग के रागों का समय समाप्त होता है और ग, नी कोमल वाले वर्ग के रागों का समय प्रारंभ होने वाला होता है साथ ही साथ जयजयवंती में दोनों वर्गों की विशेषताएँ शुद्ध व शुद्ध अंश में हैं जैसे रे,ध, शुद्ध वाले वर्ग की एक विशेषता रे, ग, ध का शुद्ध होना है और जयजयवंती में ये तीनों स्वर प्रयुक्त होते हैं। दूसरे वर्ग की विशेषता ग का

कोमल होना है और यह स्वर भी जयजयवंती में लगता है। इस प्रकार जयजयवंती राग पहले से ही ग कोमल वाले वर्ग के आगमन की सूचना दे देता है।

दृष्टि से मारवा राग को भी परमेल प्रवेशक राग कह सकते हैं क्योंकि उसमें संधि प्रकाश रागों के वर्ग की विशेषता 'रे का कोमल होना' है और साथ ही अगले वर्ग (रे ध शुद्ध वाले वर्ग) के अनुकूल ध शुद्ध है। संकीर्ण और अप्रचलित अनेक राग परमेल प्रवेशक रागों के उदाहरण बन सकते हैं जैसे, प्रातःकाल के भैरव बहार, आनन्द-भैरव आदि, सायंकाल के पीलू, पूरियाकल्याण आदि और रात्रि के मालगुंजी आदि।

प्राचीन निबद्ध-अनिबद्ध गान

प्रथम भाग में यह बतलाया जा चुका है कि ताल में बँधी रचनायें निबद्धगान के अंतर्गत और ताल में न बँधी हुई रचनायें अनिबद्ध गान के अंतर्गत आती हैं। यह भी बतलाया जा चुका है कि प्राचीन निबद्धगान के प्रकार प्रबंध, वस्तु रूपक आदि थे जिनके विभिन्न अवयवों को "धातु" कहते थे, ये धातु पाँच होते थे — उद्ग्राह, ध्रुव, मेलापक, अंतरा और आभोग। अनिबद्धगान के अंतर्गत रागालाप, रूपकालाप आलप्तिगान और स्वस्थान नियमों का आलाप गायन—इन चारों का संक्षिप्त परिचय दिया जा चुका है। रागालाप में जिन दस राग लक्षणों को दिखाया जाता है (ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व बहुत्व षाड़वत्व मंद्र और तार) इन सबका यथेष्ट विस्तार से वर्णन किया जा चुका है। यहाँ पर अप य म के दो भेद संन्यास और विन्यास का स्पष्टीकरण किया जाता है।

संन्यास-विन्यासः—प्राचीन निबद्धगानों की रचनाओं में प्रत्येक राग के विश्राम-स्वरों का ध्यान रक्खा जाता था। गीतों की अंतिम समाप्ति के स्वर को न्यास कहते थे और अन्तिम समाप्ति के अतिरिक्त गीत के अन्य सभी छोटे बड़े विभाग-उपविभागों के अंतिम स्वरों को अपन्यास कहते थे। उपन्यास के दो भेद संन्यास और विन्यास होते थे। संन्यास उन स्वरों को कहते थे जिन पर गीत के प्रथम खंड के विभिन्न छोटे-छोटे अवयव समाप्त होते हैं जैसे आधुनिक ध्रुपद के चार खंड होते हैं, स्थायी अंतरा संचारी, आभोग, उनमें से प्रथम खंड स्थायी के जो तीन या चार चरण और प्रत्येक चरण के छोटे छोटे उपविभाग बनाये जा सकते हैं, उन सभी की समाप्ति के स्वरों को सन्यास कहेंगे। विन्यास उन स्वरों को कहते थे जिन पर गीत के सभी खंडों के प्रथम छोटे अवयव समाप्त होते हैं, जैसे स्थायी के प्रथम अवयव की समाप्ति का स्वर, अंतरे के प्रथम अवयव का अन्तिम स्वर संचारी और आभोग के भी प्रथम अवयवों के अन्तिम स्वर—इन सभी प्रथम अवयवों के अन्तिम स्वरों को विन्यास कहेंगे। आजकल, जैसा कि प्रथम भाग में बतलाया जा चुका है इन अपन्यास तथा संन्यास के स्वरों का महत्त्व नहीं रहा है। न्यास के ही केवल कुछ स्वर प्रत्येक राग के लिये चुन लिये गए हैं जिन पर विस्तार करते समय बीच बीच में रुका जाता है

अलपत्व-बहुत्व :—रागालाप में अल्पत्व और बहुत्व का भी महत्त्व रहता था। आज भी रागों में हम किसी-किसी स्वर को गौण और किसी को महत्वपूर्ण बनाकर राग-विस्तार करते हैं। अल्पत्व का अर्थ है 'किसी स्वर का राग में कम महत्व दिखाना"। यह दो प्रकार से दिखाया जाता है, (१) एक लंघन और (२) दूसरा अनभ्यास से। लंघन द्वारा अल्पत्व दिखाते समय आरोह या

अवरोह में कोई स्वर छोड़ दिया जाता है जैसे शुद्ध कल्याण में निषाद का अल्पत्व है क्योंकि आरोह में उसे लांघ जाते हैं अर्थात् नहीं लगाते। आसावरी मे भी इन दृष्टि से कोमल निषाद का अल्पत्व कहा जायगा क्योंकि आरोह में उसे छोड़ देते हैं। किंतु यदि आरोह मे लंघन होते हुए भी अवरोह में वही स्वर अधिक महत्व रक्खेगा, तो उस राग में उसका अल्पत्व नहीं माना जायगा। उस दशा में उसका अल्पत्व केवल आरोह का कहा जायगा। जो स्वर राग में बिलकुल वर्जित हैं, उनका अल्पत्व मानना ठीक नहीं क्योंकि उनका तो अस्तित्व ही उस राग में नहीं है, फिर 'कम महत्व' का क्या अर्थ! अनभ्यास द्वारा अल्पत्व तब होता है जब कि किसी स्वर का प्रयोग तो हो पर कम हो और उसपर बार-बार अभ्यास न किया जाय अर्थात् उसपर न तो अधिक बार जाया जाता है और न अधिक देर तक उसपर रुका जाता है जैसे हमीर मे शुद्ध नी का अल्पत्व है क्योंकि उसपर अधिक देर तक नहीं रुक सकते और न बार-बार उसे लगाया ही जाता है। इसी प्रकार भीमपलासी मे धैवत और ऋषभ का अनभ्यासमूलक अल्पत्व है। विवादी स्वर का प्रयोग भी अनभ्यास-के अल्पत्व का उदाहरण है।

बहुत्व का अर्थ है "किसी स्वर का राग में अधिक महत्व दिखाना"। बहुत्व भी दो प्रकार से दिखाया जाता है—(१) एक तो अलंघन से और (२) दूसरे अभ्यास से। अलंघन द्वारा बहुत्व तब माना जाता है जब राग के किसी स्वर को हम आरोह अथवा अवरोह में कभी-कभी छोड़ न सकें अर्थात् उसका कभी लंघन न हो, चाहे उसपर रुका न जाय। जैसे कालिंगड़े मे मध्यम पर अभ्यास नहीं होता परन्तु उसे आते जाते लगाना अवश्य पड़ता है; छोड़ने से राग भ्रष्ट होकर विभास राग की झलक आ जाती है।

यमन में तीन मध्यम का भी इस दृष्टि से बहुत्व होता है। अभ्यास का तात्पर्य है "किसी स्वर को बार-बार और देर तक लगाना", जैसे हमीर में धैवत का अभ्यासमूलक बहुत्व है। इसी प्रकार प्रत्येक राग में वादी स्वर पर अभ्यास का बहुत्व दिखाया ही जाता है, किन्तु कभी-कभी वादी के अतिरिक्त अन्य स्वरों पर भी अभ्यास द्वारा बहुत्व दिखाया जाता है। जैसे परज मे वादी सवादी प—स हैं किन्तु निषाद पर अभ्यास मूलक बहुत्व अवश्य दिखलाया जाता है।

रागालाप में जिस प्रकार दस राग-लक्षण दिखलाये जाते हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में जो जाति-गायन प्रचलित था उसमें भी दस लक्षण माने जाते थे जो रागों के ही दस लक्षणों के सदृश थे। कहा जाता है कि राग गायन के ही स्थान पर पहले जाति गायन प्रचलित था अर्थात् यह राग का ही पर्यायी था ग्राम से मूर्छनायें और मूर्छनाओं से जातियाँ बनी थीं। कुछ विद्वान जातियों को निबन्धगान के अन्तर्गत मानते हैं अर्थात् उनके मत में जातियों में ग्रह अंश न्यास अपन्यास अल्पत्व, बहुत्व आदि के साथ ताल-बद्धता भी रहती थी। शारङ्गदेव के समय से कुछ पूर्व ही जाति गायन बन्द हो गया था और उसके स्थान पर राग गायन चल पड़ा था। भरत के समय में सात जातियाँ थीं ऐसा पता चलता है किन्तु इन जातियों के स्वरूप का स्पष्टीकरण नहीं हो पा रहा है। भरत ने जाति के दस लक्षण और शारङ्गदेव ने तेरह लक्षण लिखे हैं। शारङ्गदेव ने राग के दस लक्षण के अतिरिक्त तीन अन्य लक्षण सन्यास, विन्यास और अंतरमार्ग लिखे हैं।

ग्राम—यहां पर संक्षेप में 'ग्राम' और "मूर्छना" शब्दों को समझा देना अच्छा होगा। नियोजित श्रुति-अंतरों के सातों स्वरों

समुह समूह को ग्राम कहते हैं। "चतुश्चतुश्चतुश्चैव" के नियम
अनुसार ४. ७, ६, १३. १७, २० और २२—इन श्रुतियों पर
न पूर्वक सा, रे, ग, म, प, ध और नी स्वरों को स्थापित करके
ो ग्राम बनता है उसे षड़ज ग्राम कहते हैं इस श्रुतयंतर योजना
ं तनिक भी अंतर होने से षड़ज ग्राम नहीं रह सकता। यदि
चम को एक श्रुति नीचे करके १७वीं श्रुति के बजाय १६वीं पर ले
ाया जाय तो मध्यम ग्राम बन जाता है। इसका नाम मध्यम
ाम इसीलिये पड़ा, क्योंकि यह मध्यम से आरम्भ होता है।
ाचीन षड़ज ग्राम में ४. ३. २. ४. ४. ३. २ इस प्रकार के
त्यंतर हैं अर्थात् सा ४ श्रुति नी से ऊपर है रे ३ श्रुति सा से
पर ग २ श्रुति रे से ऊँचा इत्यादि अर्थात् रे—ग और ध नी का
रस्पर अन्तर थोड़ा है—अतः यह षड़ज ग्राम हमारे आधुनिक
ाफी थाट के सदृश लगता है क्योंकि ग रे के पास और नी ध के
ास है। मध्यम ग्राम में सा से आरंभ करने पर ता श्रुत्यंतर
, ३. २. ४. ३. ४, २ होंगे क्योंकि प, ३ श्रुति म से ऊँचा है और
, ४ श्रुति प से ऊँचा है किन्तु मध्यम को सा मानने से श्रुत्यतर
ो जायँगे ४, ३ ४, २, ४, ३, २ अर्थात स, ४ श्रुति नी से ऊँचा,
, ३ श्रुति सा से ऊँचा, ग ४ श्रुति रे से ऊँचा (यहाँ पर ग और रे
र दूर हो गये, अतः यह ग आधिनक शुद्ध ग के सदृश होगा),
, २ श्रुति ग से ऊँचा इत्यादि। इसमें नी, २ ही श्रुति ध से ऊँचा
हा। अतः ग शुद्ध और नी कोमल होने से यह प्राचीन मध्यम
ाम हमारे आधुनिक खमाज थाट के सदृश हुआ। प्राचीन काल
ं कुल तीन ग्राम माने जाते थे—षड़ज ग्राम, मध्यम ग्राम, और
ांधार ग्राम। गांधार ग्राम का लोप प्राचीन काल में ही हो गया
ा, अतः शास्त्रों में उसका स्पष्ट स्वरुप नहीं मिलता। वह वास्तव
ं निषाद-ग्राम था जो निषाद स्वर से आरम्भ होता था परन्तु

इसका प्रयोग गंधर्व द्वारा ही होने से उसे गंधर्व-ग्राम कहा लगा था। यही गंधर्व-ग्राम बिगड़ कर आगे चलकर गांधार कहा जाने लगा। मध्यकाल में आकर मध्यमग्राम भी प्रचार में उठ गया और तब से अब तक केवल षड्ज ग्राम माना जा रहा है। मध्यम ग्राम का केवल इतना भाव अवश्य बच गया है कि कुछ रागों में हम मध्यम स्वर को षड्ज मान कर गाते हैं जैसे पीलू, पहाड़ी आदि।

मूर्छना—ग्रामों से ही मूर्छनायें बनाई गई थीं। प्राचीन काल में ग्राम के प्रत्येक स्वर को बारी बारी षड्ज मान कर सातों स्वरों का क्रमिक आरोहावरोह करने से जो विविध श्रुत्यंतरों के सप्तस्वर-समूह बनते थे, उन्हें मूर्छना कहते थे। उदाहरणार्थ पहली मूर्छना तो षड्ज ग्राम के षड्ज से आरम्भ होने से षड्ज ग्राम के ही मुख्य स्वरों की हुई सा ४, रे ३, ग २, म ४, प ४ ध ३, नी २ यह आधुनिक काफी थाट के सदृश है)। दूसरी मूर्छना मन्द्र निषाद से आरम्भ होती थी—निषाद को षड्ज मानकर वह मूर्छना इस प्रकार होगी—सा २, रे ४, ग ३, म २, प ४, ध ४, नी ३ जो आधुनिक बिलावल थाट के सदृश होगी। तीसरी मूर्छना में धैवत को षड्ज मानेंगे—सा ३, रे २, ग ४, म ३, प २, ध ४, नी ४ यह यह आधुनिक सा रे ग म म ध नी सां स्वरों के सदृश होगी। ४थी मूर्छना पंचम से आरम्भ होगी—सा ४, रे ३, ग २, म ४, प ३, ध २, नी ४ जो आधुनिक आसावरी के सदृश होगी। इस प्रकार षड्ज ग्राम की कुल सात मूर्छनायें थीं। मध्यम ग्राम की भी सात मूर्छनायें थीं और गांधार ग्राम को भी सात मूर्छनायें मिलाकर कुल २१ मूर्छनायें शास्त्रों में कही गई हैं।

मध्यकाल में मूर्छना का अर्थ बदल गया। मध्यकाल में किसी राग के स्वर विस्तार की प्रारम्भिक तान जिसमें किसी ग्रह स्वर से

करके वर्ज्य स्वरों को छोड़कर आरोह अवरोह किया जाता था, उसे ही मूर्छना कहने लगे। उदाहरणार्थ यदि दुर्गा राग का ग्रह स्वर थोड़ी देर के लिए धैवत मान लें तो उस राग की मूर्छना होगी ध सा रे म प ध।ध प म रे सा ध सा, इत्यादि। इस प्रारम्भिक तान को उद्ग्राहकारक तान भी कहते थे।

आधुनिक काल में ग्रह या स्वर सभी रागों में षड्ज बन जाने के कारण मूर्छना आरोह-अवरोह से अभिन्न हो गई है। इसलिये, आधुनिक कर्नाटक संगीत में मूर्छना आरोह अवरोह को कहने लगे हैं। उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में तो 'मूर्छना' शब्द का व्यवहार ही बन्द हो गया है। कुछ लोग कंपन के अर्थ में मूर्छना को लेते हैं। वास्तव में प्राचीन मूर्छना मेल अथवा थाट के समान थी और मध्य कालीन मूर्छना एक निश्चित ग्रह स्वर से आरम्भ किया हुआ राग का आरोहावरोह थी और आधुनिक मूर्छना केवल आरोहावरोह का दूसरा नाम है जिसमें मध्यकाल की भाँति वर्ज्यावर्ज्य स्वरों का ध्यान रक्खा जाता है किन्तु ग्रह अथवा उसका प्रारम्भिक स्वर सदा षड्ज ही रहता है।

रागालाप के बाद रूपकालाप होता था जिसमे किसी ताल-बद्ध प्रबंध, वस्तु अथवा आधुनिक ध्रुपद आदि गीतों के स्थायी, अंतरा आदि की भाँति चार अथवा पाँच अवयव होते थे। संपूर्ण आलाप इन अवयवों में बाँट कर एक 'चीज' के सदृश गाया जाता था यद्यपि वह ताल-बद्ध और शब्द-बद्ध नहीं होता था। रागालाप के आगे की सीढ़ी आलप्तिगान, बतलाया जा चुका है। आलप्तिगान मे रागालाप के १० राग-लक्षण तो दिखलाये ही जाते थे, साथ ही उसमें राग का तिरोभाव और फिर आविर्भाव भी दिखाया जाता था।

आविर्भाव तिरोभाव :—किसी राग को थोड़ी देर के लिये

कुशलता से छिपाने को 'तिरोभाव' कहते हैं। तिरोभाव दो प्रकार से हो सकता है। (१) एक तो अन्य राग की छाया लाकर जैसे वसंत गाते समय, यदि निषाद पर न्यास करा जाय, तो परज की छाया आयेगी और इस तरह से वसंत का तिरोभाव हो जायगा। फिर वसंत की गम्भीरतायुक्त मुख्य पकड़ लगाकर उसका आविर्भाव किया जायगा। तिरोभाव-आविर्भाव दिखाते समय पहले मुख्य राग का स्वरूप स्थापित कर लेना चाहिये, तब तिरोभाव और अंत में आविर्भाव करना चाहिये :—

वसंत में तिरोभाव :—

(१) वसंत :—प, मंग मं, ग, मं ध रें, सां

(२) परज की छाया द्वारा तिरोभाव :—रें सां, नीध नी, ध प

(३) आविर्भाव :— मंध सां, नीध, प, मंग मंग, मंग रे सा

भैरवी में तिरोभाव :—

(१) भैरवी :—सा प, ध प, म, ग म पध पम ग म, रेसा, ध नीम

(२) मालकंश की छाया लाकर तिरोभाव :—

गग नीध, नी सां, म नीध सां, नी गं सां

(३) आविर्भाव :—नी रें, सां नीध, प, ग म ग, सारे सा

मारवा में तिरोभाव :—

(१) मारवा :—नी रें, ग मं ध,

(२) सोहनी द्वारा तिरोभाव :—मंध नी सां, रें सां, नीध

(३) आविर्भाव :—नी रें, नी ध, मंग रे

किन्तु तिरोभाव बड़ी कुशलता से करनी चाहिये। जबरदस्ती अन्य समप्रकृति रागों की छाया लाना ठीक नहीं होता। ठीक अवसर पर और उचित प्रमाण में और अत्यन्त अल्प समय के लिए ही तिरोभाव होना चाहिये और इस प्रकार होना चाहिये कि जिससे वह अत्यन्त स्वाभाविक लगे। तिरोभाव के बाद आविर्भाव करने में भी कुशलता होनी चाहिये।

(२) कभी-कभी किसी अन्य राग की छाया न लाकर भी तिरोभाव होता है, जिसमें कुछ विशिष्ट स्वर समूह ऐसे लगा दिये जाते हैं जिनके लगने से राग छिप जाता है, जैसे काफी राग में बीच में मध्यम बढ़ाकर तिरोभाव हो सकता है :—

(१) काफी :—रे ग म प, ध नी ध प, म प ग रे,

(२) तिरोभाव :—रे ग म, प ध सां नी ध प म, रे ग सारे म

(३) आविर्भाव :-प, ध ना सां, नीध पम ग, रे, रेगमप म प।

तिरोभाव गायन के अंतिम अंश में ही करना उचित है, जबकि राग का स्वरूप और उसका वातावरण भलीभांति प्रतिष्ठित हो जाय।

स्वस्थान नियम :—प्राचीन काल में अनिबद्धमान का एक प्रकार स्वस्थान नियम का आलाप भी था जिसमें राग के लक्षण सभी दिखाये जाते थे, किन्तु उसमें आलाप का क्रम एक विशेष ढंग का होता था। मुख्य चार स्वस्थान थे जिनमें एक के बाद दूसरे में क्रमानुसार आलाप चला जाता था। वे चार स्वस्थान इस प्रकार थे :—(१) प्रथम स्वस्थान में द्वयर्ध स्वर के नीचे के स्वरों में आलाप होता था, (स्थायी अथवा राग के जीव या वादी स्वर से चौथा स्वर द्वयर्ध स्वर कहलाता था)। (२) द्वितीय स्वस्थान में द्वयर्ध स्वर तक

आलाप किया जाता था (३) तृतीय स्वस्थान में अर्धस्थित स्वरों आलाप किया जाता था (द्वयर्ध और स्थायी से आठवें स्वर द्विगुण के बीच के स्वरों को अर्धस्थित स्वर कहते थे)। (४) चतुर्थ स्वस्थान में द्विगुण स्वर का भी प्रयोग हो जाता था और उसके ऊपर के स्वरों का भी प्रयोग करते हुए फिर अंत में स्थायी स्वर पर न्यास कर दिया जाता था, इस प्रकार आलाप का क्रमिक विस्तार चारों स्वस्थानों में होता था। आजकल स्वस्थान नियमों का ध्यान नहीं रक्खा जाता, केवल एक-एक दो-दो नये स्वर जोड़ते हुए आलाप आगे बढ़ाया जाता है।

आधुनिक निबद्ध-अनिबद्ध गान

आलाप गायन :—आधुनिक संगीत में अनिबद्धगान का केवल एक प्रकार है, 'आलाप', जो नोम्तोम् में भी किया जाता है और कभी-कभी आकार में भी। नोम्तोम का आलाप अधिक सुंदर और प्रभावशाली होता है। उसमें नोम्, तोम्, री, द, न, ता, रे, ने, आदि अक्षरों की सहायता से राग-विस्तार किया जाता है और विभिन्न आलापों की समाप्ति पर आलाप की सम दिखाई जाती है यह सम रागोचित्त स्वरसमुदाय में 'ने ता नोम्' अथवा 'री दे रे नोम्' आदि जोड़कर दिखलाई जाती है। आकार के आलाप में यह सम दिखलाने की सुविधा नहीं रहती और साथ ही साथ स्वर विन्यास की सुन्दरता भी आकार में अधिक नहीं दिखलाई जा सकती। ख्यालों के प्रारम्भ में आकार का संक्षिप्त आलाप उस राग को केवल सूचना मात्र देने के लिये लिया जाता है परन्तु ध्रुपद और धमार गायन के प्रारम्भ में नोम् तोम् का विस्तृत आलाप देर तक किया जाता है। इस आलाप की पूर्ण विधि का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है :—

नोम् तोम का आलाप :—कुछ विद्वानों का मत है कि कुछ पूर्व रागों का आलाप करते समय ईश्वर के कुछ नामों का प्रयोग करके स्वर-विस्तार किया जाता था जैसे 'ओम् अनन्त नारायण हरि' अथवा 'तू ही अनन्त हरि' आदि। बाद मे केवल स्वराग वैचित्र्य का ही ध्यान रह गया, शब्दों का ध्यान कम हो गया और इस प्रकार आलाप मे नोम् तोम, ए री, ना, ता आदि अक्षर प्रयुक्त होने लगे। आज भी बड़ौदे के उस्ताद फ़ैय्याज़ख़ाँ साहब नोम् तोम् के आलाप में कभी-कभी 'नारायण अनन्त हरि' शब्दों का गायन बीच-बीच में करते हैं।

नोम् तोम् के आलाप में अनेक स्वर-वैचित्र्य उत्पन्न करने की सरलता होती है और उसका प्रभाव भी सुन्दर पड़ता है। केवल आकार के आलाप मे श्रोताओं का मन ऊब भी सकता है। फिर, नोम् तोम् मे द्रुत लय का आलाप भी किया जा सकता है जो अत्यन्त सुन्दर और रोचक होता है।

बहुधा, गायक पूरे आलाप को चार भागों में बाँट देते हैं :—स्थायी, अंतरा, संचारी और आभोग। आकार के आलाप मे इतने विस्तार की आवश्यकता नहीं होती है इसलिए ये चार भाग वास्तव में नोम् तोम् के आलाप में किये जाते हैं। आकार के आलाप में मुख्यतया स्थायी और अंतरा, दो ही भाग दिखाने होते हैं। जिससे पूर्वांग और उत्तरांग में राग का स्वरूप स्पष्ट किया जा सके। कभी-कभी गमक युक्त संचारी भाग दिखा दिया जाता है। साधारणतया आलाप के चार भागों को ध्रुपद आदि के चार भागों के सदृश माना जाता है, अर्थात् स्थायी में पहले षड्ज लगाकर वादी स्वर का महत्व दिखाते हुए पूर्वांग में आलाप किया जाता है। प्रारम्भ में कुछ मुख्य स्वर-समुदायों अथवा पकड़ का प्रयोग किया जाता है

जिससे राग स्पष्ट हो जाय। स्थायी भाग में अधिकतर मंद्र और मध्य सप्तकों में आलाप होता है और निषाद तक बढ़त करते हुये जाते हैं। कभी-कभी तार षड्ज पर स्थायी भाग समाप्त कर दिया जाता है। यदि राग उत्तरांग प्रधान होता है, तो उसके संवादी-स्वर का महत्व दिखाते हुए रागोचित पूर्वांग की मुख्य स्वर-संगतियाँ दिखाई जाती हैं। जो राग अत्यधिक उत्तरांग के हैं जैसे परज, सोहनी आदि, उनका आलाप उत्तरांग में ही प्रारम्भ किया जाता है अर्थात् मध्य षड्ज लगाने के बाद रागोचित आरोह करते हुए उत्तरांग में जाते हैं और वादी तथा अन्य न्यास के स्वरों को बढ़ाते हुए फिर नीचे लौट आते हैं। दूसरा भाग अंतरा, अधिकतर गांधार मध्यम अथवा पंचम से आरम्भ होता है और तार षड्ज पर अनेक ढंग से विश्रांति करते हैं। तार के गांधार, मध्यम और कभी कभी पंचम स्वर एक आलाप करके फिर मध्य षड्ज तक लौट आते हैं। तीसरे भाग संचारी में अधिकतर मंद्र और मध्य सप्तकों में ही आलाप होता है, तार में नहीं और इसमें गमक का प्रयोग विशेष होता है, यह सा, म या प से आरम्भ होता है। वास्तव में यह स्थायी भाग की एक संशोधित पुनरावृत्ति है। चौथे भाग, आभोग को अंतरे की पुनरावृत्ति कह सकते हैं। इसमें तीनों सप्तकों का प्रयोग हो सकता है और तार सप्तक में जितने ऊँचे जाना चाहें जा सकते हैं।

ऊपर ध्रुपद आदि चीजों के चार भागों समान आलाप के भी चार भागों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। किन्तु वास्तव में जब हम नोम तोम का आलाप करते हैं तब इन चार भागों में कुछ अन्य विशेषतायें भी आ जाती हैं। नोमतोम् के आलाप की मुख्य विशेषतायें ये हैं :—

(१) आलाप का स्थायी भाग :—इसमें विलंबित लय में मींड

विशेष प्रयोग के साथ आलाप होता है। कणों का भी प्रयोग होता है किंतु विलंबित भाव की रक्षा के लिए इस भाग में अधिक झटके मुरकियाँ अथवा तानों का प्रयोग ठीक नहीं होता। षड्ज को सुन्दर विधि से लगाया जाता है। पूर्वांग में राग को स्पष्ट करने के बाद एक-एक स्वर को बढ़ाया जाता है यह बढ़त वादी संवादी और अन्य न्यास के स्वरों की होती है। इन स्वरों पर नीचे और ऊपर के स्वरों से अनेक प्रकार की स्वर-रचना करते हुए न्यास किया जाता है और बीच-बीच में राग के मुख्य स्वर-समुदाय अथवा पकड़ और अन्य विशेष स्वरसंगीतियों का प्रयोग करते रहते हैं जिसमें राग के स्वरूप की हानि न होने पाये। इस प्रकार अनेक आलाप लेकर षड्ज पर आते हैं और प्रत्येक आलाप के अंत में आलाप की सम दिखलाई जाती है जिसमें 'ने ता ऽ नोम्' अथवा "त ना ऽ नोम्" आदि अक्षर प्रयुक्त होते हैं, इस सम से श्रोताओं पर सुन्दर प्रभाव पड़ता है और वे समझ लेते हैं कि एक आलाप समाप्त हुआ। 'ने ता ऽ नोम' में 'नो' पर जोर दिया जाता है और उसी पर तबले वाला भी किसी बोल की सहायता से दाहिने अथवा बायें पर सम दिखला देता है। स्थायी भाग में एक-एक स्वर को इस प्रकार बहलाते हुए बढ़त की जाती है और अधिकतर निषाद तक जाकर अथवा कभी-कभी तार सा का स्पर्श करके मध्य सा पर लौट आते हैं।

(२) आलाप का अंतरा भाग :—इस भाग को ग, म या प से आरंभ करके तार षड्ज पर जाते हैं किन्तु कुशल गायक राग के अनुकूल कभी-कभी अन्य सुन्दर ढंग से तार सां पर पहुंचते हैं। इस भाग में लय कुछ बढ़ा दी जाती है। अनेक ढंग से तार सां और फिर अन्य न्यास के स्वरों पर न्यास किया जाता है। बहुधा अंतरे भाग में भी प्रत्येक आलाप के अंत में मध्य षड्ज पर लौट

पर आलाप की सम दिखलाई जाती है और फिर उत्तरांग में चढ़ा जाता है। इस प्रकार उत्तरांग में राग विस्तार करके मध्य षड्ज पर अंतरा भाग समाप्त किया जाता है।

(३) आलाप का संचारी भाग—इस तीसरे भाग में लय और भी बढ़ जाती है। इसमें मध्य लय से आरम्भ करके धीरे-धीरे लय बढ़ाते जाते हैं और दोनों, कणों तथा गमकों का प्रयोग विशेष किया जाता है। इसमें तोम् न न न न, तोम् न न न न, री द न न, री द न न न, रे ने रे ने रे ने नोम् नोम् न न त न न न आदि अक्षरों का लय में उच्चारण किया जाता है। संचारी भाग में भी उत्तरांग में जाते हैं और वह भी रे ने रे ने रे ने नोम् आदि कहते हुए। तार सां पर भी इस प्रकार की लयकारी दिखलाई जाती है और गमक का विशेष चमत्कार दिखलाया जाता है। अन्त में मध्य षड्ज पर समाप्त करते हैं। संचारी भाग के प्रत्येक आलाप के अंत में सम दिखलाई जाती है परन्तु तेज लय में—ने ताऽ नोम्।

(४) आलाप का आभोग भाग :—इस चौथे भाग में लय पूर्ण द्रुत कर दी जाती है और लय वैचित्र्य दिखलाया जाता है। तीनों सप्तकों में फिरत करते हुए राग विस्तार होता है। इसका गायन अत्यन्त कठिन है और उसके लिये गले की बहुत तैयारी चाहिये। इस भाग में भी बीच-बीच में गमक ली जाती है।

इस प्रकार नोम तोम का पूरा आलाप किया जाता है। किन्तु इसकी विधि कोई निश्चित नहीं कही जा सकती। सभी गायक अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उपरोक्त चार विभागों में परिवर्तन कर लेते हैं। उदाहरणार्थ कुछ गायक स्थायी, अंतरा, संचारी और आभोग, चारों भागों में मंद्र मध्य और तार सप्तकों का विस्तार करते हैं। केवल लय बढ़ाते जाते हैं जैसे वे (१) स्थायी में विलंबित

लय में मींड युक्त और कण युक्त आलाप तीनों सप्तकों में करते हैं। अर्थात इस आलाप की स्थायी के भीतर ही एक प्रकार से स्थायी और अंतरा (ध्रुपद आदि के स्थायी वा अंतरा के अर्थ में) दिखा दिया जाता है। (२) फिर आलाप के अंतरे में मध्य लय कर दी जाती है और तानों का प्रयोग आरम्भ कर देते हैं। बीच-बीच में ३-४ स्वरों की तानों की सहायता से आलाप की रचना करते हैं और इस प्रकार तीनों सप्तक में फिर से आलाप होता है; अर्थात् आलाप के अन्तरा के भीतर भी साधारण अर्थ में स्थायी वा अंतरा दोनों आ जाते हैं। (३) आलाप के संचारी में भी पूरा तीनों सप्तकों का आलाप होता है किन्तु इसकी लय द्रुत हो जाती है तथा गमक का विशेष प्रयोग और लयकारी का भी चमत्कार दिखलाया जाता है। (४) आलाप के आभोग में लय को और भी बढ़ा देते हैं। इसमें गायक जितनी तेजी में गाया जा सकता है गाता है और तीनों सप्तकों का प्रयोग करता है। गमक का भी प्रयोग जारी रहता है। इस भाग में तराने की छटा सी मिलती है।

आधुनिक निबद्ध गान

आधुनिक निबद्धगान के अंतर्गत जो ध्रुपद, धमार ख्याल (बड़े और छोटे), टप्पा, ठुमरी, चतुरंग, तराना, लक्षणगीत, स्वरमालिका गजल, भजन आदि गीतों के प्रकार होते हैं उन सब का विस्तृत विवरण इस पुस्तक के प्रथम भाग में दिया जा चुका है, अतः उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं। यहाँ केवल कुछ मुख्य गीतों की कुछ मुख्य विशेषताओं का परिचय दिया जाता है :—

ध्रुपद-धमार :—इन गीतों में खटके, मुरकियाँ नहीं प्रयुक्त होती हैं, केवल मींड, गमक और कणों का प्रयोग होता है। कण-प्रयोग में भी प्रायः झटका नहीं दिया जाता। धमार की अपेक्षा ध्रुपद में

गंभीरता का ध्यान अधिक रक्खा जाता है। यदि पंचम स्वर पर कुछ देर रुक कर फिर पंचम का उच्चारण तीव्र मध्यम का कण देकर करना हो, तो ध्रुपद में यह कण भी मींड का भाव लिए रहेगा, यद्यपि यह मींड अत्यन्त संक्षिप्त होगी :—प, ^म^ प, ख्याल गायन में दूसरे पंचम पर झटके के साथ भी तीव्र मध्यम का कण दिया जा सकता है प, ^म^ प। ध्रुपद धमार में शब्दों के भावों का ध्यान रख कर गाना चाहिये। आजकल रामपुर घराने के ही दो ध्रुपदिये हैं और बंगाल में भी कभी-कभी अच्छे ध्रुपद सुनने को मिलते हैं। ध्रुपद गायन में बहुत दम और कसी आवाज की आवश्यकता होती है। ध्रुपद गायन का प्रचार कम हो जाने के मुख्य चार कारण हैं :—(१) एक तो जितनी स्वतन्त्रता आलाप तानों को ख्याल गायन में मिलने लगी है, उतनी ही ध्रुपद में नहीं। गायक और श्रोता दोनों ही विभिन्न प्रकार की तानें बोलतानें और द्रुत लय की सारगम तानें आदि सुनकर चमत्कृत हो जाते हैं। राग-विस्तार में रागों की पवित्रता का भी ख्याल गायन में उतना ध्यान नहीं रखना पड़ता क्योंकि तानों में स्वभावतः राग हानि कुछ न कुछ हो ही जाती है इस राग हानि से वे गायक बच पाते हैं जो एक तो अत्यन्त कुशल हैं और दूसरे मर्यादित तानें लेते हैं। ध्रुपद गायन में मन-मानें विस्तार की कोई गुंजाइश नहीं। (२) दूसरा कारण है तबला बजने पर ख्याल गायन की संगत का एक विचित्र आकर्षक प्रभाव पड़ता है, विशेषकर द्रुत लय के ख्यालों में। लयकारी का वैचित्र्य श्रोताओं को मुग्ध कर देता है। (३) परिस्थितियों के बदलने से समाज में शृङ्गार की भावना अधिक आ गई है और विशेषकर दरबारों में गायकों को राजाओं को प्रसन्न करने के लिये शृङ्गार सम्बन्धी पदों को गाना पड़ता था। अतः ध्रुपद के ईश्वर भक्ति अथवा

ईश्वर स्तुति सम्बन्धी पदों का महात्म्य कम हो गया और धीरे-धीरे ठुमरी, ख्याल आदि शृंगार रस सम्बन्धी गीतों का प्रचार बढ़ गया मानसिक चपलता ही ख्यालों की चपलता में प्रतिबिंबित होती है। ध्रुपद गायन की स्थिरता और गंभीरता कुछ-कुछ बड़े ख्यालों में अवशिष्ट है। (४) ध्रुपद गायन में बहुत वेसरत की आवश्यकता पड़ती है। साधारण ख्याल गायन में थोड़ी मेहनत से भी काम चल जाता है क्योंकि ख्याल गायन में वैचित्र्य की ओर ध्यान अधिक रहता है, आवाज के लगाव या कसाव पर उतना नहीं।

प्राचीन काल में ध्रुपद-गायक कलावंत कहलाते थे और उनकी विभिन्न गायन शैलियाँ होती थीं जिन्हें 'बानी' कहते थे, ये बानी चार थीं :—खंडार, नोहार, डागुर और गोबरहार। कहते हैं कि प्राचीन काल की गायन-रीतियों से ही ये बानियाँ उत्पन्न हुईं। उन गायन रीतियों को 'गति' कहते थे जो पाँच मानी जाती थीं:—(१) शुद्ध (जिसमें वक्र और मधुर स्वर अधिक होते थे)। (२) भिन्ना (जिसमें सूक्ष्म रूप से स्वरों का वक्रत्व और मधुरता तथा गमक का प्रयोग होता था) (३) गौड़ी (जिसमें तीनों सप्तकों में गम्भीरता पूर्वक उहाटी नामक गमक और ललित स्वर-प्रयोग होता था) (४) वेसरा (जिसमें ठोड़ी को छाती पर लाकर हकार या उकार के योग से वेग गति से चतुर्वर्ण युक्त स्वर रचना होती थी) (५) साधारणी।

ख्याल :—ख्यालों में जो विविध प्रकार की तानों का प्रयोग होता है उनका वर्णन पिछले भाग में हो चुका है। यहाँ कुछ तानों के उदाहरण दिये जाते हैं और ख्याल गायकी में प्रयुक्त खटकों, मुरकियों और ज़मज़मों के भी उदाहरण दिये जाते हैं, जिनके प्रयोग से सौंदर्य और वैचित्र्य की वृद्धि होती है :—

(१) शुद्ध तान :—नी़ रे ग मं प ध नी सां नीध प मं ग रे सा।

(२) कूट तान :—नी़ रे ग मं प मं धप मं ग रे ग मं ध नी म
नी ध प मं गं मं प मं रे ग प रे ग रे सा।

(३) मिश्रतान :—नी रें ग मं प ध पमं पमं ग पे मंध नी सां
रें गं रें सा नीध पमं गरे नी ध मंध पमं गरे सा

(४) सपाट या ढाल-तान :—नी़ रे ग म ध नी सारें मं मं पं मं गं रें सां नी ध प म ग रे सा। (वक्ररागों में शुद्ध तान वक्रत्व लिए होगी किन्तु उसमें सपाट तान न हो सकेगी। वक्र रागों के अवरोह में सपाट तानें बन सक्ती हैं।)

(५) छूट की तान :—ग- गंरेंसांनीधपमंग रेस — — (अर्थात् ऊपर के किसी स्वर से शीघ्रता के साथ लौट आना।)

(६) अलंकारिक तान :—नीरेगग रेगमंमं गमपंपं मपधधं प नीनी धंनीसासा नीसां रेंरें सांरेंगंगंरेंसां नीसां मंधनीनी धपमप नीरे गगध।

रेसनीसा अथवा :—साग रेम गप मंध पनी धसा नीरें संगं रेंगं सांरें नीसां धनी पध मप गम रेग सारे नीसा।

(७) दानेदार तानें :—दानेदार तानें वे होती हैं जिनमें कणों का प्रयोग बहुत होता है। ये अनेक प्रकार की होती हैं। इनके सरल प्रकारों को कणयुक्त तानें भी कह सकते हैं।

यहाँ कुछ मुख्य दानेदार तानों के टुकड़े लिखे जाते हैं:—सभी टुकड़े तेज लय में गाये जायेंगे)

(i) एक दाना सारेग ^{म} रे, नीसारे $^{रे}$सा, प नी प रे $^{रे}$सा,

(ii) दो दाने सारेम $^{रे}$म ^{म} रे, नीसारे $^{सा}$रे $^{रे}$सा, या मरे $^{सा}$रेसा $^{सा}$नी।

(iii) तीन दाने—सारेम $^{रे}$म $^{रे}$म ^{म} रे, निसारे $^{सा}$रे $^{सा}$रे $^{रे}$सा, या म ^{म}रे $^{रे}$सा $^{सा}$नी।

(iv) एक दाने का पेंचदार इकहरा टुकड़ा—नीसारेगरे $^{सा}$रे

(v) एक दाने का पेंचदार दुहरा टुकड़ा—नीसारेमरे $^{सा}$रेमरे $^{सा}$रे

इन्ही दानेदार टुकड़ों का विविध विस्तार करके अन्य अनेक सुन्दर अलंकृत टुकड़े निर्मित किये जा सकते हैं।
उदाहरणार्थ :—

(vi) नीस रेम ^{म}रे $^{रे}$ सा, रे $^{रे}$सा $^{सा}$नी, सारे प ^{प} म ^{म}रे $^{रे}$सां रेम रे $^{रे}$सा, रेम सारेम रेम रे $^{सा}$रे मरे $^{सा}$रे सा।

(vii) सारे $^{सा}$रे न $^{रे}$म $^{रे}$म प ^{म}प ^{म}प नी नी प ^{प}म ^{ग}रे $^{रे}$सा

(viii) सांनी ^{प}नीप ^{म}पम $^{रे}$मरे $^{सा}$रेसा।

इन दानों का उच्चारण अधिक झटका न देकर यदि भावयुक्त मींड की सहायता के किया जाय तो और भी सुन्दर होगा। किन्तु गुरुमुख से सुनकर ही इन दानेदार तानों का ठीक उच्चारण संभव है।

(८) फिरत की कठिन तानें :—सारे मप नी नी पम प नी नी मम पप नीनी रेंरें ममम पप ममम पपप नीनी ममम नीनी मम नीनी पम प नी नी मपप मरे मम रेसा रेमपनी मप नी नी सासा-

रेंरें सामा सांसां रेंसांसां रेंसांसां धनीनी पम रेसानीसा ।

(६) गमक तान, बराबरी की तानें बेलय की तानें और बोल-तानें किस प्रकार की होती हैं इसको संकेत प्रथम भाग में किया जा चुका है। कुछ लोग बराबरी की तानें ठाह लय में लेना अधिक अच्छा समझते हैं किंतु यह तभी हो सकता है जब लय मध्य की हो। अति विलंबित लय में तो दुगुन, चौगुन आदि लयकारी की सभी तानों को, जो ठीक लय में चलें, बराबरी की कह सकते हैं।

टप्पा और ठुमरी :—टप्पा में भी दानेदार तानें होती हैं, किंतु वे ख्याल ढंग की नहीं होतीं। ख्यालों में दानेदार तानों के बीच-बीच में स्वर—टिकाव भी होता है और जब लम्बी दानेदार तानें ली जाती हैं तो उनमें अधिक पेंच नहीं लगाये जाते। इसके विपरीत टप्पे की दानेदार तानों में एक तो लम्बी-लम्बी तानें होती हैं और दूसरे उनमें अनेक पेंच बीच-बीच में आते हैं। साथ ही साथ टप्पा गायन में स्थिरता है ही नहीं—पहले तो छोटी छोटी तानें थोड़ी थोड़ी देर में ली जाती हैं फिर लम्बी दानेदार तानें भी ली जाती हैं। टप्पे की तानों का एक नमूना नीचे दिया जाता है:—

धनीमारें [सां]रेंसां नी ध नी, सांरेंगंम–[ग]मंगं रें गं–[रें]सां, धनीसांरें
[सां]रेंसां [नी]सांनी [ध]नीध [प]धपमनी [ध]नीधपम ग रेसानीसा ।

ठुमरी में ख्यालों और टप्पा की भांति दानेदार तानें अथवा लम्बी सीधी तानें आदि नहीं ली जाती। ठुमरी भाव प्रधान गीत है। अतः उसमें शब्दों के भावों को स्पष्ट करने के लिए अनेक ढंग से स्वर-रचना करके उनमें बोल बनाये जाते हैं और बीच बीच में मुर्की, गिटकिड़ी आदि बारीक स्वर प्रयोग बहुत होते हैं। ठुमरी के

कुछ विशेष स्वर-प्रयोग नीचे दिये जाते :—(इन प्रयोगों को मुलायमात के साथ बिना गंभीरता या झटके के निकालना चाहिये) :—

(१) मींड और कोमल खटका :—सां ध सां नी नी धप गमग, गम पध नी धनी पध पनी नी धप गमग; पधनी नी धप गमग।

(२) मुर्की और गिटकड़ी :—सांनी (मां) धसांनी नी धप, ग (म) ग, गम गम सां (मां) नी धप ग प मग; ग (म)(न) गरेसा।

(३) गमपधपमपधनी ध प; गमपधपमपधधपधनीसां नी सां

(४) नी नी धनीसां नी सांनीधपपधप; मांनी ध नीध प धनीगांनीसा।

ठुमरी के इन खटकों, मुर्कियों और दानों का ठीक अभ्यास भी गुरुमुख से सुनकर ही सम्भव है।

ख्याल-गायन में निपुण होने के लिये ध्रुपद, टप्पा और ठुमरी गीतों का आवश्यक अभ्यास करना चाहिये जिसमें उसमें ध्रुपदगत स्थिरता और सुर-लगाव, ठुमरीगत भाव और माधुर्य तथा टप्पागत दानों और तान—वैचित्र्य का सुन्दर समन्वय हो सके।

पंडित, वाग्गेयकार, नायकी, गायकी

पंडित :—प्राचीनकाल में पंडित उस विद्वान् को कहते थे जिसे गायन कला का तो साधारण ज्ञान हो किंतु गायन-शास्त्र का पूर्ण ज्ञान न हो।

वाग्गेयकार :—वाग्गेयकार उस विद्वान् को कहते थे जो स्वर-

रचना तथा शब्द-रचना दोनों में पटु हो अर्थात् वह कवि और संगीतज्ञ दोनों हो। 'वाग्गेयकार' शब्द में वाक् का अर्थ है पद्य-रचना (अथवा मातु) और गेय का भाव है स्वर रचना (अथवा धातु) संगीत रत्नाकर में वाग्गेयकार में अनेक गुणों का वर्णन किया है जिसमें से कुछ मुख्य गुण नीचे लिखे जाते हैं :—

(१) साहित्य शास्त्र का ज्ञान (इसके अंतर्गत व्याकरण छंद, रस और अलंकार आदि सभी शास्त्रों का ज्ञान आ जाता है।)

(२) देश की स्थिति अथवा चाल—रीतियों का ज्ञान।

(३) देश की विभिन्न भाषाओं का ज्ञान।

(४) संगीत शास्त्र का पूर्ण ज्ञान (इसी के अंतर्गत गायन, वादन और नृत्य तीनों शास्त्रों का ज्ञान आ जाता है)।

(५) संगीत कला का पूर्ण ज्ञान (अर्थात् लय, ताल, स्वर, राग सभी का ज्ञान)।

(६) अनेक काकु ज्ञान (ध्वनि से विभिन्न विकारों को काकु कहते थे। ये छः होते थे :—स्वरकाकु, रागकाकु, देशकाकु क्षेत्र-काकु, अन्य रागकाकु, यंत्रकाकु)।

(७) स्वस्थ शरीर।

(८) अलौकिक बुद्धि और प्रतिभा।

(९) एकाग्रता, सरसता, रागद्वेष से मुक्त।

(१०) शीघ्र कवित्व और रचना करने की शक्ति।

नायकी :—गुरु परम्परा के प्राप्त शिक्षा को ही नायकी कहते हैं अर्थात् गुरु की शैली पर ही पूर्णतया गाने को नायकी कहते हैं जिसमें गायक अपनी कोई नई शैली नहीं मिलाता।

गायकी :—गुरुपरा से प्राप्त ज्ञान में अपनी प्रतिभा तथा अभ्यास से अथवा अन्य गुरुजन के श्रवण से प्राप्त ज्ञान का सम्मिश्रण करके जो स्वतन्त्र गायन शैली कोई गायक बनाता है, उसे गायकी कहते हैं।

नायक वह है जो संगीत शास्त्र और कला का ज्ञान रखता है और उसके आधार पर नवीन गीत—रचनाएँ करता है। गायक वह है जो गायन में निपुण हो। प्रत्येक नायक को कुछ अंश में गायक अवश्य ही होना चाहिये, चाहे वह चमत्कृत गायक न हो, परन्तु एक गायक के लिये यह अनिवार्य नहीं कि वह नायक भी हो। नायक होना कठिन काम है। प्रसिद्ध नायकों में तानसेन, सदारंग, अदारंग, तानवरस, मनरंग, हररंग, मोहम्मदशाह, "रंगीले" के नाम लिए जा सकते हैं।

गायकों के गुण—अवगुण

वैसे तो गायकों के अनेक गुणों और अवगुणों के नाम दिये जा सकते हैं और दिये भी हैं, परन्तु जिन गुणों और अवगुणों का अत्यन्त महत्व गायन कला अथवा गायन शास्त्र में है, ऐसे मुख्य बारह गुण और बारह अवगुण नीचे दिये जाते हैं :—

उत्तम गायकों के मुख्य बारह गुण :—(१) मधुर कण्ठ—आवाज गाने योग्य और सरस हो। (२) पूर्ण स्वर और श्रुति ज्ञान—स्वर-स्थान ठीक लगें और यथोचित श्रुतियों का शुद्ध प्रयोग भी हो। वाद्यों को ठीक सुर में मिलाने का अभ्यास हो। (३) लय और ताल ज्ञान—विभिन्न लयकारियों का ज्ञान हो और मुखड़े को सुन्दरता के साथ पकड़ने का अभ्यास हो। गायन में लय का आनंद हो। (४) राग-ज्ञान—रागों के स्वरूप का पूर्ण या स्पष्ट ज्ञान हो,

सम प्रकृति रागों से बचाव की क्षमता हो और राग के सभी नियमों का पालन हो। राग में अल्पत्व-बहुत्व, तिरोभाव-आविर्भाव और न्यास के स्वरों के प्रयोग आदि को दिखलाने की निपुणता हो। (५) रचनात्मक प्रतिभा—अपनी प्रतिभा से अनेक प्रकार के आलाप—तान आदि का वैचित्र्य उत्पन्न कर सके। गायन में अधिक से अधिक विविधता ला सके। अधिक से अधिक विस्तार कर सके। (६) सौंदर्य-प्रियता—राग की रंजकता का ध्यान हो। (७) शुद्ध उच्चारण—आवाज लगाने का ढंग भी शुद्ध हो अर्थात अकार, इकार, उकार आदि का स्पष्ट उच्चारण हो और पद के अक्षरों का भी शुद्ध उच्चारण हो, (८) आत्म विश्वास—निःशंक होकर गाना, घबड़ाहट न हो, अनावश्यक परिश्रम न पता चले, इत्मीनान से गायन हो, मानों स्वर और ताल उसके वश में हैं। (९) आवाज की परिधि—तीनो सप्तकों मे शुद्ध, गंभीर और सुन्दर आवाज लगे। आवाज को आवश्कतानुसार धीमी और जोरदार बनाने का ज्ञान हो। (१०) गायकी का ज्ञान—गायन-शैली उत्तम घराने की हो अथवा अपनी निजी उत्तम शैली हो, जिसमें मींड, कण, खटके, दानों और विविध तानों तथा लयकारियों के प्रयोग का पक्कापन हो। मुखड़ा पकड़ने में निपुणता हो और सम्पूर्ण गायकी चमत्कार पूर्ण एवं प्रभावोत्पादक हो।

(११) समय अवसर और श्रोताओं का ध्यान रखकर गाने की शक्ति—श्रोताओं पर अधिक से अधिक प्रभाव डालना और उन्हें मुग्ध करना। (१२) संपूर्ण गायन दोष रहित हो—अर्थात-गायक में किसी प्रकार के मुद्रा आदि के दोष न हों।

गायकों के मुख्य बारह अवगुण :—बेसुरा गाना (२) बेताला गाना (३) बेराग गाना—अर्थात् गाते समय राग भ्रष्ट हो जाना

(४) त्रुटिपूर्ण नादोच्चारण—अर्थात् आवाज कँपाना या चिल्लाना आदि। (५) पद के अक्षरों का अस्पष्ट और दोषयुक्त उच्चारण (६) नीरस गायन करना—भाव और रस के सौंदर्य की ओर ध्यान न देना (७) शंकित और आत्मविश्वास-रहित होकर गाना—डर और घबड़ाहट में व्यर्थ की शीघ्रता करना। (८) जहां आवाज नहीं जाती है वहाँ भी उसे जबरदस्ती ले जाना—जिसमें या तो आवाज कर्कश हो जाय और या फट जाय। (६) अव्यवस्थित ढंग से गाना—गायकी असुन्दर, (१०) नाक से आवाज निकालना (११) वैचित्र्य हीन—बार-बार दोहराना। (१२) मुद्रा दोष होना (अर्थात् गाते समय, भयानक चेहरा बनाना, चेहरे और गर्दन की नसों को फुलाना, गालों को फुलाना, कंठ को टेढ़ा करना, आँख मींचना, दाँत चबाना, गाल या कान पर हाथ रखना, हाथ-पाँव पटकना आदि)।

विवादी स्वर का प्रयोग

राग में सामान्यतः विवादी स्वरों का प्रयोग नहीं होता, किन्तु कुशल गायक थोड़ी मात्रा में कभी-कभी उनका प्रयोग राग की रंजकता अथवा राग-वैचित्र्य बढ़ाने के लिये करते हैं। किसी राग में उन्हीं विवादी स्वरों का प्रयोग होना चाहिये, जो उसकी चलन अथवा उसके स्वरूप में सरलता से खप जायँ और वे राग के वातावरण के सर्वथा प्रतिकूल न लगें। हिन्दुस्तानी संगीत में अनेक रागों में विवादी स्वर प्रयुक्त होने लगे हैं और उनका प्रयोग कुछ रागों में तो इतना प्रिय हो गया है कि वे विवादी स्वर बढ़ते-बढ़ते आज अनुवादी स्वर बन गये हैं जैसे अनुमानतः हमीर केदार, कामोद, छायानट और गौड़ सारंग रागों में कोमल निषाद आरम्भ में एक विवादी स्वर था और उसका प्रयोग किंचित मात्र में अव-

रोह में सां ध नीप—इस भांति होता था। आज भी हमीर, कामोद और गौड़सारंग रागों में उसका विवादी के नाते इसी भाँति थोड़ा प्रयोग कण, स्पर्श अथवा दुतलय की मींड द्वारा होता है। परन्तु केदार और छायानट रागों में यह प्रयोग इतना बढ़ गया कि आज इन रागों में कोमल निषाद को विवादी के स्थान पर अनुवादी कहना अधिक संगत जान पड़ता है। छायानट में प्राय: रेगम नी ध प, सां ध नी प अथवा नी, ध प, रेगमप टुकड़ों में उसका प्रयोग अच्छी तरह से होता है। केदार में प, मंपधनी धप, मपधप म, इस प्रकार बारबार प्रयोग होता है।

इसी प्रकार भैरवी राग में अनेक विवादी स्वरों का प्रयोग होने लगा है—यहाँ तक कि अब वह बारहों स्वरों की रागिनी बन गई है। भैरवी में मुख्यतः शुद्ध ऋषभ, शुद्ध निपाद और तीव्र मध्यम विवादी स्वर हैं जिनका प्रयोग कभी-कभी अत्यन्त सुन्दर लगता है जैसे—

भैरवी में शुद्ध रे:—सा रे ग, रे ग सारे सा, ध नी सा

भैरवी में शुद्ध नी—सा रे ग म, रे, सारे नी सा, नी रे म

भैरवी में तीव्र म:—ध, मं म ग, सा रे सा अथवा ध प ग

रे ग, प ध नी मं म ग रे सा रे सा।

भैरवी में शुद्ध ध:—सां, नीध (नी) ध प, गमप ध प

अथवा प, प ध नी ध नी ^प^ध ^प^म, प

ध सां नी ध प

भैरवी में शुद्ध ग :—प, ध पम, गम गम पनीधप म ग,

रेसारे ^{सा}नी सा रे सा रे पम रे, सा।

इसी प्रकार पीलू, काफी देश आदि सभी क्षुद्र प्रकृति के रागों में विशेषकर ठुमरी गायन में अनेक स्वर विवादी के लाते लगाये जाते हैं और उससे सुन्दरता बढ़ती है।

पीलू, मे शुद्ध ग:—सा, ग, म प ^मग, रेसा नी, सा

पीलू मे कोमल रे:—सा ग, रेसा, नी, सारे सानी ध प

काफी में कोमल ध) रे ग मप, ध नी ध प, मगम ध प,
ग रे, ग रे सा, रेगमप मप

देश में कोमल ग:—मप नी, सां, प नी सां रें, रें मं रें गं रें

सां, प नी सां रें नी ध प, ध म ग रे

आज तो भैरवी में शुद्ध रे और पीलू मे शुद्ध ग विवादी से अनुवादी की श्रेणी में आ गये हैं। इसी प्रकार अन्य अनेक उदाहरण भी विवादी स्वरों के प्रयोग के हो सकते हैं किन्तु यह प्रयोग समुचित, रागोचित और कुशलतापूर्वक करना चाहिये।

चतुर्थ अध्याय

वाद्यों के प्रकार

वाद्यों के मुख्य चार प्रकार माने गये हैं अर्थात् भारतीय सर्भ वाद्यों को मुख्य चार श्रेणियों में विभक्त किया गया है:— (१) तत वाद्य (२) सुषिर वाद्य (३) अवनद्ध वाद्य और (४) घने वाद्य।

(१) तत वाद्य वे होते हैं जिनमें स्वरोत्पत्ति तारों के आंदोलन द्वारा होती है। तत वाद्यों के अन्तर्गत सभी तार के तंत्रवाद्य आ जाते। इनमें भी कुछ विद्वान् मुख्य दो उपविभाग करते हैं, तत और वितत। तत वाद्य वे हैं जिनमें तार को अँगुलियाँ, मिजराब अथवा जवा द्वारा बजाया जाता है जैसे वीणा, सितार, सरोद और तम्बूरा आदि। वीणा और सितार मिजराब से, सरोद जवा से और तम्बूरा अँगुलियों से बजता है। वितत वाद्य वे हैं जो गज से बजाये जाते हैं जैसे दिलरुबा, इसराज, सारंगी और बेला।

तंत्रवाद्यों का एक तीसरा उपविभाग और माना जा सकता है जिसमें तारों को लकड़ियों या हथौड़े का आघात पहुँचाकर स्वरोत्पादन किया है, जैसे स्वरमंडल और पियानो।

(२) सुषिर वाद्य वे होते हैं जिनमें स्वरोत्पत्ति प्रत्यक्ष वायु के कंपन द्वारा होती है जैसे बाँसुरी, क्लैरोनेट, हारमोनियम और आरगन। हारमोनियम और आरगन में धौंकनी की सहायता से वायु पहुँचाई जाती है और बाँसुरी आदि में संगीतज्ञ फूँककर वायु देता है। मुँह से फूँककर बजने वाले वाद्यों से भी अनेक वर्ग हैं जैसे एक तो वह जिसमें हवा किसी पतली पत्ती अथवा रीड के

बीच से जाती है (जैसे शहनाई) दूसरा वर्ग वह है जिसमें छिद्रों के बीच से हवा जाती है (जैसे बाँसुरी), तीसरा वह, जिसमें न छिद्र होते हैं और न पत्ती (जैसे शंख)।

(३) अवनद्ध वे होते हैं जिनमें खिंचे हुए चमड़े अथवा खाल के आंदोलन से ध्वनि उत्पन्न होती है. जैसे मृदंग, पखावज, तबला, नगाड़ा, ढोलक, डमरू आदि। ये अवनद्ध वाद्य अधिकतर ताल दिखलाने अथवा समय नापने का कार्य करते हैं। इनमें से मृदङ्ग, पखावज और तबले का बहुत विकास हो गया है अतः उन्हें स्वतन्त्र वाद्य के रूप में भी स्वीकार किया जा रहा है।

(४) घन वाद्य वे हैं जिनमें स्वरोत्पत्ति लकड़ी या किसी धातु के कंपन से होती है जैसे जलतरङ्ग, नल तरंग, काष्ठतरंग, मँजीरा, झाँझ और करताल आदि। इनमें से पिछले तीन केवल लय दिखलाने के काम में आते हैं।

कुछ संगीत विद्वान भारतीय वाद्यों का विभाजन एक भिन्न प्रकार से करते हैं। वे तत और वितत को दो पृथक विभाग मानकर अवनद्ध को घन के अंतर्गत मान लेते हैं और इस प्रकार वे चार प्रकार के वाद्य (१) तत (२) वितत (३) घन और (४) सुषिर मानते हैं। यह विभाजन भी अनुचित नहीं है किन्तु अवनद्ध और घनवाद्यों को पृथक श्रेणी का मानना अधिक समुचित प्रतीत होता है। कुछ व्यक्ति वाद्यों के पाँच प्रकार मान कर तत और वितत को भी पृथक कर देते हैं और, अवनद्ध और घन को भी पृथक कर देते हैं। कुछ अन्य विद्वान केवल तीन ही मुख्य विभाग बनाते हैं, तत, घन और सुषिर परन्तु सर्वोत्तम विभाजन-प्रणाली वही है जो समझाई गई है।

शुद्ध मोटा होता है, और बीच के दोनों षड्ज (अथवा जोड़ी) के तार पतले होते हैं। चौथा मन्द्र षड्ज का तार (अथवा खरज का तार) पीतल का और मोटा है। पुरुषों के गायन में प्राय तम्बूर का प्रथम तार भी पीतल का होता है किन्तु स्त्रियों के ऊँचे स्वर के लिए वह लोहे का होता है।

सितार

इतिहास —सितार की उत्पत्ति के विषय में अभी तक कोई निश्चित और प्रामाणिक मत नहीं बना है। अपने अनुमान से ही प्राय अनेक विद्वान् अपने-अपने विचार प्रकट कर देते हैं। यह मानने में तो कोई आपत्ति नहीं है कि सितार किसी प्राचीन भारतीय वीणा के प्रसार के आधार पर बनाया गया होगा। यह भी लगभग सर्वमान्य विचार है कि चौदहवीं शताब्दी में दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के दरबार के हजरत अमीर खुसरो नामक प्रसिद्ध कवि एव संगीतज्ञ ने सर्व प्रथम किसी प्राचीन वीणा के आधार पर म यमादि वीणा बनाकर उस पर तीन तार चढ़ाये और इसीलिये उसका नाम "सहतार" रक्खा (फारसी में "सह" का अर्थ "तीन" होता है। यही शब्द "सहतार" क्रमश विकसित होकर "सितार' बन गया और इस प्रकार सितार का आविष्कार करने वाला अमीर खुसरो माना गया। धीरे-धीरे सितार में तारों की संख्या बढ़ी और आज उसमें अधिकतर सात तार होते हैं और इन मुख्य तारों के नीचे झनकार के लिए बहुत से तरफ के तार भी लगाये जाते हैं। कुछ वादक सितार में मुख्य तार सात के स्थान पर आठ बाँधते हैं।

जिस प्रकार सितार के आविष्कार का श्रेय अमीर खुसरो को मिलता है, उसी प्रकार सितार के रूप में संशोधन और परिवर्धन

तम्बुरा

अङ्ग वर्णन :—तम्बुरा एक स्वर देने वाला वाद्य है, जिसकी सहायता से भारतीय संगीत में गायन होता है। उसके अंग इस प्रकार हैं :—(१) तुम्बा—लौकी का बना हुआ गोलाकार भाग (२) तबली—तुम्बे के ऊपर जो लकड़ी की ढकनी रहती है, जिसके ऊपर घुड़च होता है। (३) घुड़च अथवा घोड़ी (ब्रिज)—तुम्बे की तबली पर हड्डी की (अथवा लकड़ी की) छोटी सी चोकी, जिसके ऊपर से होकर तम्बुरे के चार तार जाते हैं। (४) लंगोट अथवा कील तुम्बे की पेंदी में सब तार बाँधने के लिये जो एक कील लगी होती है कभी-कभी उस स्थान पर लंगोट नामक तिकोनी पट्टी सी होती है जिसमें चारों तारों को बाँधने का प्रबन्ध होता है। कुछ लोग इसे मोगरा भी कहते हैं। (५) डांड—लकड़ी की लम्बी पोली डंडी जिसपर एक पतली तख्ती ढंकी रहती है। इस डंडी की पतली तख्ती के ऊपर ऊपर तार जाते हैं, यद्यपि उसे छूते नहीं। इस डांड में ही एक किनारे तारदान और अटी तथा खूँटियाँ रहती हैं और दूसरे छोर पर इस डांड को तुम्बे में जोड़ दिया जाता है। (६) गुल —तुम्बा और डांड जहां जुड़ते हैं उस कंठ-सम स्थान को गुल कहते हैं। (७) और (८) अटी और तारदान—खूँटियों की तरफ डांड पर हड्डी की दो पट्टियाँ लगी होती हैं जिनमें से एक पर तार रक्खे होते हैं और दूसरी में छिद्र होते हैं जिससे तार पिरोये जाते हैं। पहली पट्टी जिसके ऊपर तार रक्खे जाते हैं अर्थात् जिसके ऊपर से होकर तार खूँटियों तक जाते हैं, उसे अटी या अटक कहते हैं। दूसरी पट्टी को तारदान या तारगहन कहते हैं जिसके सूराखों में से होकर तार खूँटियों तक जाते हैं। तुम्बे की कील (लंगोट) से तार घुड़च पर से होते हुए, अटकपर जाते हैं और अटक के बाद वे तारदान के छिद्रों में पिरोये जाते हैं। (९) खूंटियाँ

—तम्बुरे के डाँड के अग्र भाग पर (अर्थात् बाईं ओर) अटी या तारदान के पीछे तारों को बाँधने के लिये लकड़ी की जो कुँजियाँ सी होती हैं, उन्हें खूँटियाँ कहते हैं। (१०) सिरा—तम्बुरे के डाँड का बाईं छोर का किनारे का भाग सिरा कहलाता है जो तारदान से पीछे होता है, और जिसमें चार खूँटियाँ होती हैं। दो खूँटियाँ सिरे के अगल-बगल में होती हैं और दो सिरे के ऊपर। (११) मनका—घुरच और कील के बीच में तार जिन मोतियों में पिराये हुये जाते हैं उन्हें मनका कहते हैं। मनके अथवा मोती से तारों को थोड़ा चढ़ाया उतारा जा सकता है ये मनके गोल चपटे अथवा पान चवक आदि शक्ल के होते हैं और वे हाथी दाँत या काँच के होते हैं। (१२) तार—तम्बुरे में चार तार होते हैं जिनका एक छोर तुम्बें की पेंदी में कील में फंसा रहता है और दूसरा छोर खूँटियों में बँधा रहता है। खूँटियों के बाद तार, तारगहन, अटक, डाँड के ऊपर, घुरच के ऊपर छूता हुआ, मनके बीच से होते हुए कील तक जाते हैं। (१३) सूत अथवा धागा—जोर घुरच और तारों के बीच में दबाया जाता है। जिसको ठीक स्थान पर लगाने से तम्बुरे की झंकार बहुत अच्छी निकलती है और हम कहते हैं कि तम्बुरे की जवारी खुली है अथवा अच्छी है। जवारी वास्तव में घुरच की सतह को कहते हैं जिसे समान रूप से ठीक करने पर धागे की सहायता से झनकार उत्पन्न होती है।

तार मिलाना :—तम्बुरे का प्रथम तार मंद्र के पंचम से, बीच दोनों तार मध्य ये षड्ज से और चौथा तार मंद्र के षड्ज से मिलाया जाता है। जिन रागों में पंचम वर्ज्य होता है उसमें पंचम का तार मध्यम से मिलाया जाता है और पूरिया आदि रागों में वह तार निषाद में मिला लिया है। प्रथम तीन तार लोहे के होते हैं (अर्थात् स्टील के या फौलादी तार) जिनमें से पहला पंचम का तार

सितार
खूंटी
तारगहन
अटी
पड़दा
डांड
गुल
म
सा
सा
प
प
सा चिकारी
सा चिकारी
घुरच
मनका
तबली
तुंबा
लंगोट
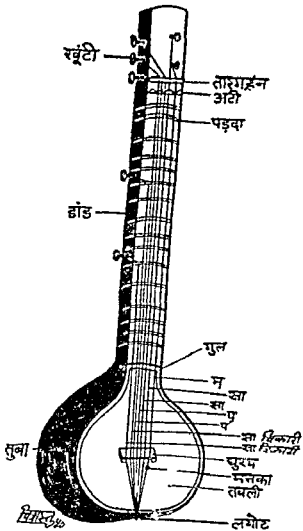
करने तथा उसका प्रचार विशेष रूप से बढ़ाने का श्रेय जयपुर में बसने वाले, तानसेन के द्वितीय पुत्र सूरतसेन के वंश के एक विद्वान् अमृतसेन और उसके पौत्र निहालसेन को मिलता है। अमृतसेन ने सितार के बाजे को उन्नत किया और उनके पौत्र निहालसेन ने तो उसका स्तर और भी अधिक ऊँचा उठाया। जयपुर के इस वंश का अंतिम प्रसिद्ध तंत्रकार अमीर खाँ था जिसने अमीर खानी बाज चलाया और जिसके शिष्यों में सबसे प्रसिद्ध शिष्य स्वर्गीय उस्ताद इमदाद खाँ थे जो आज की दुनिया के बेजोड़ सितारिया माने जाते थे। कुछ ही वर्ष पूर्व इनायत खाँ का स्वर्गवास हो गया और आज उनके पुत्र विलायत खाँ बहुत बड़े अंश में उनके बाज या उनकी तय्यारी का नमूना हमारे सामने रख रहे हैं। "सेनी घराने" का यह तंत्रकारों का परिवार बहुत आदरणीय माना गया है।

सेनी घराने के अतिरिक्त, अमीर खुसरो के वंश में अथवा शिष्य परम्परा में भी सितार का प्रचार जारी रहा। यह परम्परा सेनियों से भिन्न थी और इसी परम्परा में फिरोज एक प्रसिद्ध सितारिये हुये जिनके पुत्र मसीद खाँ सितारिये, ने मसीदखानी बाज चलाया, जिसकी चाल विलंबित होती है और जिसमें मींड, गमक आदि के विस्तार का बहुत बड़ा क्षेत्र होता है। यह बाज फिरोज खाँ ने ही सोचा होगा और बाद में मसीद खाँ ने उसमें उन्नति की होगी। इसी से कदाचित आज भी अनेक स्थानों में विलंबित गतों को मसीद खानी गत न कह कर फिरोज खानी गत कहा जा रहा है। कुछ विद्वान् फिरोज खाँ को अमीर खुसरो का ही पुत्र मानते हैं किंतु इस विषय पर लेखक अभी कोई निश्चित निर्णय नहीं दे पा रहा है।

अमीर गतें मध्यलय में बजाई जाती हैं और मसीदखानी गतें विलंबित लय में (ख्यालों के प्रभाव से) किंतु दोनों के बोल समान

है—दिड़ दा दिड़ दा डा दा या दा। इसलिए आजकल दोनों प्रकारों को एक मसीदखानी गतों के प्रकार के ही अंतर्गत मान लिया गया है और अब "अमीरखानी" शब्द का प्रयोग बंद सा हो गया है। मसीदखानी बाज को दिल्ली का बाज कहते हैं जिसकी मुख्य विशेषता उसकी विलंबित लय है। बाद को कव्वाली अथवा छोटे ख्यालों और ठुमरी के प्रभाव से लखनऊ के एक संगीतज्ञ रजाखां ने सितार का एक द्रुतलय का बाज चलाया जिसे रजाखानी बाज अथवा पूरब का बाज कहते हैं। इस प्रकार आजकल सितार में दो प्रकार की गतें बजाई जाती हैं (१) मसीदखानी गतें और (२) रजा खानी गतें।

अंग-वर्णन :—तुंबा—लौकी (अथवा कोंहड़ा) का गोलाकार भाग। कुछ सितारों में लकड़ी का चिपटा तुंबा भी प्रयुक्त होता है। तुंबों के लिये विशेष प्रकार की लौकियां बोई जाती हैं जिनसे बड़े और गोल तुंबे बन सकें। (कुछ स्थानों पर कोंहड़े को ही लौकी कहते हैं। जिन लौकियों के तुंबे बनते हैं वे सब्जी की लंबी लौकियाँ नहीं होतीं वरन् सब्जी के कोंहड़े की एक विशेष किस्म होती हैं। (२) तबली —तुंबे के ऊपर का ढक्कन, जिस पर निज अथवा घुरच रक्खा जाता है। यह लकड़ी का होती है। (३) डांड—लकड़ी की लंबी पोली डंडी जिस पर एक पतली तख्ती ढँकी रहती है। इसी डॉड पर पड़दे बँधे रहते हैं जिन पर अँगुलियाँ चलाई जाती हैं। (४) गुल अथवा गुलू—जिस-कंठ-सम स्थान पर तुंबे और डांड जुड़े रहते हैं, (५) उसे गुल कहते हैं। गुल के स्थान पर कभी-कभी त्रिभुजाकार पट्टी लगी रहती है और उसके दोनों ओर फूल पत्ते कढ़े रहते हैं। (५) कील, मोगरा अथवा लगोट :—तुंबे की पेंदी में तारों को बांधने का जो प्रबन्ध होता है उसी के ये तीन नाम हैं। किसी सितार में कील होती है जिसमें तार बांधे जाते हैं और किसी में

उस स्थान पर एक पट्टी सी रहती है जिसमें तारों को फँसाने का प्रबन्ध रहता है। (६) घुरच अथवा घोड़ी—तुम्बे की तबली पर, बीच-बीच में, जो छोटी सी लकड़ी की चौकी रक्खी रहती है उसे घुरच (ब्रिज) कहते हैं। घुरच के ऊपर ही तार रक्खे जाते हैं अर्थात् वे उस पर सहारा लेते हुए एक ओर कील और खूँटियों तक जाते हैं। घुरच अधिकतर हाथी दाँत का होता है पर कभी-कभी हड्डी का भी होता है। घुरच की सतह को ही जवारी कहते हैं। जब सतह समान होकर तारों की झन्कार स्पष्ट करती है, तब हम कहते हैं कि सितार की जवारी खुली रहती है। (७) और (८) अटी और तार दान—खूँटियों की ओर हड्डी की दो पट्टियाँ होती हैं जिनमें से एक को अटी या अटक कहते हैं जिसके ऊपर तार अटकते हुए जाते हैं और दूसरी को तारदान या तारगहन कहते हैं जिसमें छिद्र होते हैं इन्हीं छिद्र में तार पिरोये जाते हैं। खूँटियों से तार तारदान छिद्रों में होकर फिर अटी के ऊपर से जाते हैं और डाँड को न छूते हुए उसमें बँधे पड़दे के ऊपर ऊपर होते हुए वे घुरच पर जाते हैं और घुरच के बाद वे कील तक चले जाते हैं। (९) मनका—घुरच और कील के बीच में तार, एक कांच अथवा हाथी दांत के मोती के छेद के बीच से होकर जाता है, उसी को मनका कहते हैं। यह अनेक प्रकार का होता है, गोल मोती, चिपटा मोती, बतक अथवा पान की शक्ल का मोती आदि। (१०) खूटिया—ये लकड़ी की कुञ्जियाँ सी होती हैं जिनमें तारों के छोर लपेट कर बांधे जाते हैं। सितार मुख्य सात तारों के लिए सात खूंटियाँ होती हैं जिसमें से दो खूंटियां सितार के सिरे के ऊपर होती हैं एक बाज के तार की और दूसरी जोड़ी के पहले तार की) फिर तीन खूंटियां सिरे की बायें तरफ होती हैं (एक जोड़ी के दूसरे तार की, एक पंचम के पीतल के तार की और एक पंचम के लोहे के तार की) और शेष दो खूंटियां डांड़

में होती हैं (एक मध्य षड्ज के चिकारी में तार की और एक पंचम अथवा तार षड्ज के चिकारी के तार की) । इन सात खूंटियों के अतिरिक्त तरफ के तारों के लिए अनेक छोटी-छोटी खूंटियां डांड में लगी रहती हैं । (११) पड़दे—स्वरों के निश्चित करने के लिए डांड पर जो पीतल की सलाइयों के टुकड़े बँधे रहते हैं उन्हें पड़दे, कट या सुन्दरी कहते हैं । ये पड़दे पक्की तांत से बाँधे जाते हैं। पड़दों की संख्या १६ और २४ के बीच में होती है ।

(१२) तार—तारों का विस्तृत वर्णन नीचे दिया जाता है ।

सितार मिलाना :—सितार में मुख्य सात तार इस प्रकार मिलाये जाते हैं :—

तार नं० १—बाज का तार, लोहे का (अर्थात इस्पात, स्टील, या फौलादी तार) जो मंद्र मध्यम से मिलता है ।

तार नं० २, ३—जोड़ी के तार, पीतल के, जो मंद्र षड्ज में मिलते हैं ।

तार नं० ४—खरज के पंचम का तार, पीतल का, जो अनुमंद्र सप्तक के पंचम में मिलता है । इसे कुछ लोग खरज का तार भी कहते हैं यद्यपि यह है पंचम स्वर का तार । कदाचित अनुमंद्र का पंचम होने के कारण ही "खरज" का पंचम कहा जाने लगा ।

तार नं० ५—मंद्र के पंचम का तार, लोहे का (फौलादी), जो मंद्र के पंचम मे मिलता है । इसे केवल पचम तार का तार भी कह देते हैं।

तार नं० ६—चिकरी का पहला तार, लोहे का (फौलादी) जो मध्य षड्ज में मिलता है ।

तार नं० ७—चिकारी का दूसरा तार, लोहे का (फौलादी), जो तार षड्ज अथवा कभी कभी मध्य पंचम में मिलता है। दोनों चिकारी के तारों को पपैया के तार भी कहते हैं ।

कुछ बड़े सितारों और विशेषकर सुरबहार में मुख्य आठ तार होते। आठवाँ तार अणुमंद्र पंचम के तार के बाद अथवा मंद्र पचम के तार के बाद होता है। यह तार प्रायः दो पीतल के तारों को एक में बटकर बनाया जाता है या बहुत मोटा पीतल का तार ले लिया जाता है। इसे खरज का तार भी कहते हैं।

तरफ के तार के तार पड़दों के नीचे होते हैं और उनकी संख्या कोई ११ मानते है, कोई १४ को १५ कोई उससे भी अधिक मानते हैं। अधिकतर तरफ से तार मंद्र के पचम से आरंभ होकर धैवत, निषाद आदि एक-एक स्वर बढ़ाते जाते हैं और तार के षड़ज, मध्यम या पञ्चम तक जाते हैं। रागों के स्वरों के अनुसार तरफ के तार कोमल अथवा शुद्ध बना लिए जाते हैं।

सितार मिलाते समय पहले जोड़ी के तार मंद्र षड़ज मे मिलाये जाते हैं; फिर उसके मध्यम में बाज का तार मिलाया जाता है और पञ्चम मे चौथे और पांचवे मिलाये जाते (कुछ लोग ४ था तार मंद्र पञ्चम का और पाँचवा तार अणुमंद्र पंचम का लगाते हैं।) फिर छटे तार को मध्य षड़ज और सातवें तार को तार के षड़ज अथवा मध्य पंचम मे मिलाया जाता है। अन्त में तरफ के तार मिलाये जाते हैं। वाद्य मिलाने की क्रिया का अधिक विस्तृत वर्णन इस पुस्तक के तीसरे भाग में किया जायगा।

सितार-वादन संबंधी पारिभाषिक शब्द

ठाट :—सितार में पड़दों को विभिन्न स्वर-स्थानों पर बाँधकर बनाई गई रचना को ठाट कहते हैं। ठाट के दो मुख्य प्रकार हैं (१) अचल ठाट और (२) चल ठाट। (१) अचल ठाट वह होता है जिसमें पड़दों की संख्या इतनी हो कि बिना पड़दों को खिसकाये प्रत्येक थाट के राग बज सकें अर्थात् उसमें तीन, कोमलादि सब

स्वरों के पृथक पर्दे हों। अचल ठाट में अधिकतर २४ पर्दे बाँधे जाते हैं—मं, प, ध, ध, नी, नी, सा, रे, रे, ग, ग, म, मं, प, ध, ध, नी, नी, सां, रें, रें, गं, गं, मं। कुछ लोग तार म का पर्दा न बाँध कर २३ पर्दों का अचल ठाट मानते हैं। (२) चल ठाट वह होता है जिसमें विभिन्न थाटों के रागों को बजाने के लिए उनके स्वरों के अनुसार सितार के पर्दे खिसका कर मिलाये जाते हैं, अर्थात् उसमें पर्दों की संख्या कम होती है। अधिकतर चल ठाट में पर्दों की संख्या १६ से १९ के बीच में होती है। १६ पर्दों के चल ठाट में ये स्वर होते हैं :—मं, प, ध, नी, नी, सा, रे, ग, म, मं, प, ध, नी, सां, रें, गं। १७ पर्दों के चल ठाट में मंद्र सप्तक के कोमल ध का भी पर्दा बाँधा जाता है। १८ पर्दों के चल ठाट में मध्य सप्तक के कोमल नी का भी पर्दा रहता है और १९ पर्दों के चल ठाट में तार के मध्यम का भी एक पर्दा जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार सामान्यतः हम १९ पर्दों के चल ठाट २४ पर्दों का अचल ठाट मान सकते हैं इस विषय में विभिन्न विद्वान अपनी अपनी रुचि के अनुसार पर्दों की संख्या थोड़ा हेर फेर कर लेते हैं।

बोल :—सितार में मिजराव के प्रहार से जो ध्वनि निकलती है, उसे बोल कहते हैं। मुख्य बोल दो हैं—(१) दा और (२) ड़ा। इन्हीं दोनों को शीघ्रता से बजाने से 'दिड़' बोल निकलता है। इस प्रकार द, ड़ा, और दिड़, इन्हीं तीनों बोलों का सितार-वादन में मुख्य प्राधान्य रहते हैं और इन्हीं के हेर-फेर से कुछ अन्य बोल भी बना लिये जाते हैं, उदाहरणार्थ द्रा, दाड़, द्रादा आदि। कुछ लोग ड़ा के स्थान पर रा प्रयोग करते हैं।

आकर्ष और अपकर्ष :—मिजराव से बाहर की ओर से तार पर प्रहार करते हुए उसकी अँगुली को अपनी ओर लाने से आकर्ष-

होता है। इसी को सुलट प्रहार भी कहते हैं और इसी से 'द' निकलता है।

मिजराब की अँगुली को अपनी ओर से बाहर की तरफ ले जाते हुए तार पर प्रहार करने से अपकर्ष-प्रहार अथवा उलट प्रहार होता है, जिससे 'ड़ा' निकलता है।

गत:—रागानुकूल स्वरों में सितार के बोलों की सुन्दर ताल बद्ध रचना को गत कहते हैं। गत के मुख्य दो चरण अथवा भाग होते हैं, स्थायी और अंतरा कुछ गतों मे स्थायी कुछ लंबी होती है और उसकी रचना ऐसी होती है कि फिर अंतरे की आवश्यकता नहीं रहती। अतः कभी-कभी अंतरा-रहित गतें भी सुनने मे आती हैं।

गतों के मुख्य दो प्रकार होते हैं। (१) मसीदखानी गत, जिसके बोल दिड़, दा दिड़ दा ड़ा, दा दा ड़ा दिड़, दा दिड़ दा ड़ा, दा दा ड़ा होते हैं और जो विलंबित लय में मींड आदि के विशेष प्रयोग के साथ बजती है। कुछ लोग मसीदखानी गत को फिरोजखानी गत कहते हैं।

(२) रजाखानी गत, जिसमे अनेक प्रकार की चालों के बोल होते हैं जैसे, दा ऽड़ दा दा, ऽड़ दा दा ड़ा, दा दिड़ दिड़ दिड़, दा ड़दा ऽड़दा। ये गतें द्रुतलय की होती हैं। इसकी चाल ढाल तराने के सदृश होती है। इसमे मसीदखानी गतों की गम्भीरता नहीं होती।

कुछ विद्वान, गतों का एक तीसरा प्रकार भी मानते हैं, (३) अमीर खानी गत जो मध्यकाल में बजती है और जिसके बोल वही होते हैं जो मसीदखानी गत के हैं। ये गतें सरल और प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी मानी जाती हैं। किंतु बोलों की समता

पर्दों से पृथक होते हो। अचल ठाट में अधिकतर २४ पर्दे बाँधे जाते हैं—ग, प, ध, ध, नी, सा, रे, रे, ग, ग, म, म, प, ध, ध, नी, नी, सां रें रें, गं, गं, मं। कुछ लोग तार म का पर्दा न बाँध कर २३ पर्दों का अचल ठाट मानते हैं। (२) चल ठाट वह होता है जिसमें विभिन्न थाटों के रागों को बजाने के लिए उनके स्वरों के अनुसार सितार के पर्दे विभिन्न पर मिलाये जाते हैं, अर्थात उसमें पर्दों की संख्या कम होती है। अधिकतर चल ठाट में पर्दों की संख्या १६ से १६ के बीच में होती है। १६ पर्दों के चल ठाट में ये स्वर होते हैं :—गं, प, ध, नी, नी, सा, रे, ग, म, म, प ध, नी, सां, रे, गं। १७ पर्दों के चल ठाट में मंद्र सप्तक के कोमल ध का भी पर्दा बाँधा जाता है। १८ पर्दों के चल ठाट में मध्य सप्तक के कोमल नी का भी पर्दा रहता है और १६ पर्दों के चल ठाट में तार के मध्यम का भी एक पर्दा जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार सामान्यतः हम १६ पर्दों के चल ठाट २४ पर्दों का अचल ठाट मान सकते हैं इस विषय में विभिन्न विद्वान अपनी अपनी रुचि के अनुसार पर्दों की संख्या थोड़ा हेर फेर कर लेते हैं।

बोल :—सितार में मिजराब के प्रहार से जो ध्वनि निकलती है, उसे बोल कहते हैं। मुख्य बोल दो हैं—(१) दा और (२) ड़ा। इन्हीं दोनों को शीघ्रता से बजाने से 'दिड़' बोल निकलता है। इस प्रकार द, ड़ा, और दिड़, इन्हीं तीनों बोलों का सितार-वादन में मुख्य प्राधान्य रहते हैं और इन्हीं के हेर-फेर से कुछ अन्य बोल भी बना लिये जाते हैं, उदाहरणार्थ द्रा, दाड़, द्रादा आदि। कुछ लोग ड़ा के स्थान पर रा प्रयोग करते हैं।

आकर्ष और अपकर्ष :—मिजराब से बाहर की ओर से तार पर प्रहार करते हुए उसकी अँगुली को अपनी ओर लाने से आकर्ष-

प्रहार होता है। इसी को मुलट प्रहार भी कहते हैं और इसी से 'द' निकलता है।

मिजराव की अँगुली को अपनी ओर से बाहर की तरफ ले जाते हुए तार पर प्रहार करने से अपकर्ष-प्रहार अथवा उलट प्रहार होता है, जिससे 'ड़ा' निकलता है।

गत:—रागानुकूल स्वरों में सितार के बोलों की सुन्दर ताल बद्ध रचना को गत कहते हैं। गत के मुख्य दो चरण अथवा भाग होते हैं, स्थायी और अंतरा कुछ गतों में स्थायी कुछ लंबी होती है और उसकी रचना ऐसी होती है कि फिर अंतरे की आवश्यकता नहीं रहती। अतः कभी-कभी अंतरा-रहित गतें भी सुनने में आती हैं।

गतों के मुख्य दो प्रकार होते हैं। (१) मसीदखानी गत, जिसके बोल दिड़, दा दिड़ दा ड़ा, दा दा ड़ा दिड़, दा दिड़ दा ड़ा, दा दा ड़ा होते हैं और जो विलंबित लय में मींड आदि के विशेष प्रयोग के साथ बजती है। कुछ लोग मसीदखानी गत को फिरोजखानी गत कहते हैं।

(२) रजाखानी गत, जिसमें अनेक प्रकार की चालों के बोल होते हैं जैसे, दा ऽड़ दा दा, ऽड़ दा दा ड़ा, दा दिड़ दिड़ दिड़, दा ड़दा ऽड़दा। ये गतें द्रुतलय की होती हैं। इसकी चाल ढाल तराने के सदृश होती है। इसमें मसीदखानी गतों की गम्भीरता नहीं होती।

कुछ विद्वान, गतों का एक तीसरा प्रकार भी मानते हैं, (३) अमीर खानी गत जो मध्यकाल में बजती है और जिसके बोल वही होते हैं जो मसीदखानी गत के हैं। ये गतें सरल और प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी मानी जाती हैं। किंतु बोलों की समता

७

स्वरों के सूचक होते हैं। अचल ठाट में अधिकतर २४ पर्दे बाँधे जाते हैं—मं, प, ध, प, नी, सा, रे, रे, ग, ग, म, म, प, ध, ध, नी, नी, सां रें, रें, गं, गं, मं। कुछ लोग तार म का पर्दा न बाँध कर २३ पर्दों का अचल ठाट मानते हैं। (२) चल ठाट वह होता है जिसमें विभिन्न थाटों के रागों को बजाने के लिए उनके स्वरों के अनुसार सितार के पर्दे क्रमशः कर मिलाये जाते हैं, अर्थात् उसमें पर्दों की संख्या कम होती है। अधिकतर चल ठाट में पर्दों की संख्या १६ से १९ के बीच में होती है। १६ पर्दों के चल ठाट में ये स्वर होते हैं :—मं, प, ध, नी, नी, सा, रे, ग, म, मं, प ध, नी, सां, रें गं। १७ पर्दों के चल ठाट में मंद्र सप्तक के कोमल ध का भी पर्दा बाँधा जाता है। १८ पर्दों के चल ठाट में मध्य सप्तक के कोमल नी का भी पर्दा रहता है और १९ पर्दों के चल ठाट में तार के मध्यम का भी एक पर्दा जोड़ दिया जाता है। इस प्रकार सामान्यतः हम १९ पर्दों के चल ठाट २४ पर्दों का अचल ठाट मान सकते हैं इस विषय में विभिन्न विद्वान अपनी अपनी रुचि के अनुसार पर्दों की संख्या थोड़ा हेर फेर कर लेते हैं।

बोल :—सितार में मिजराब के प्रहार से जो ध्वनि निकलती है, उसे बोल कहते हैं। मुख्य बोल दो हैं—(१) दा और (२) ड़ा। इन्हीं दोनों को शीघ्रता से बजाने से 'दिड़' बोल निकलता है। इस प्रकार द, ड़ा, और दिड़, इन्हीं तीनों बोलों का सितार-वादन में मुख्य प्राधान्य रहते हैं और इन्हीं के हेर-फेर से कुछ अन्य बोल भी बना लिये जाते हैं, उदाहरणार्थ द्रा, दाड़, द्रादा आदि। कुछ लोग ड़ा के स्थान पर रा प्रयोग करते हैं।

आकर्ष और अपकर्ष :—मिजराब से बाहर की ओर से तार पर प्रहार करते हुए उसकी अँगुली को अपनी ओर लाने से आकर्ष-

ार होता है। इसी को मुलट प्रहार भी कहते हैं और इसी से 'द' निकलता है।

मिजराब की अँगुली को अपनी ओर से बाहर की तरफ ले जाते हुए तार पर प्रहार करने से अपकर्ष-प्रहार अथवा उलट प्रहार होता है, जिससे 'ड़ा' निकलता है।

गत:—रागानुकूल स्वरों में सितार के बोलों की सुन्दर ताल बद्ध रचना को गत कहते हैं। गत के मुख्य दो चरण अथवा भाग होते हैं, स्थायी और अंतरा कुछ गतों में स्थायी कुछ लंबी होती है और उसकी रचना ऐसी होती है कि फिर अंतरे की आवश्यकता नहीं रहती। अतः कभी-कभी अंतरा-रहित गतें भी सुनने में आती हैं।

गतों के मुख्य दो प्रकार होते हैं। (१) मसीदखानी गत, जिसके बोल दिड़, दा दिड़ दा ड़ा, दा दा ड़ा दिड़, दा दिड़ दा ड़ा, दा दा ड़ा होते हैं और जो विलंबित लय में मींड आदि के विशेष प्रयोग के साथ बजती है। कुछ लोग मसीदखानी गत को फिरोजखानी गत कहते हैं।

(२) रजाखानी गत, जिसमें अनेक प्रकार की चालों के बोल होते हैं जैसे, दा ऽड़ दा दा, ऽड़ दा दा ड़ा, दा दिड़ दिड़ दिड़, दा ड़दा ऽड़दा। ये गतें द्रुतलय की होती हैं। इसकी चाल ढाल तराने के सदृश होती है। इसमें मसीदखानी गतों की गम्भीरता नहीं होती।

कुछ विद्वान, गतों का एक तीसरा प्रकार भी मानते हैं, (३) अमीर खानी गत जो मध्यकाल में बजती है और जिसके बोल वही होते हैं जो मसीदखानी गत के हैं। ये गतें सरल और प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी मानी जाती हैं। किंतु बोलों की समता

के कारण अमीरखानी गत को मसीदखानी गतों के अंतर्गत अथवा उसी के समान मान लिया गया है।

बाज :—सितार के विभिन्न बोलों की तरह तरह से रचना करके विभिन्न रीतियों से सितार बजाने को बाज कहते हैं। बाज के मुख्य दो प्रकार हैं (१) दिल्ली का बाज अथवा मसीदखानी-बाज—जिसमें मसीदखानी गतें बजाई जाती हैं, लय विलंबित रहती है और गायकी के ढंग से आलाप, मींड, जमजमा, मुर्की आदि गमकों का प्रयोग होता है। इस मसीदखानी बाज की उत्पत्ति के विषय में पीछे लिखा जा चुका है।

(२) पूरब का बाज अथवा गुलामरजा बाज (रजाखानी बाज जिसमें द्रुतलय का प्राधान्य है और जिसमें रजाखानी गतें बजाई जाती हैं। इसमें तय्यारी के साथ तोड़े और झाले बजाये जाते हैं और अंत में लय बहुत तेज़ कर दी जाती है। इसे साधारणतया लखनऊ का बाज भी कह देते हैं।

(३) एक तीसरा बाज अमीरखानी बाज भी माना गया है जिसमें मध्यलय में मसीदखानी गतों के ही बोल बजते हैं। इसीलिए आजकल अमीरखानी बाज का पृथक अस्तित्व मिट सा गया है।

व्यापक अर्थ में "बाज" के अंतर्गत बजाने की विविध शैलियाँ और उनके विस्तार आते हैं और शैली भेद से अनेक बाज बन जाते हैं। केवल लय और बोलों के अंतर से ही बाज का भेद मानना पर्याप्त नहीं। मसीदखानी और रजाखानी गतों को ही अनेक वादक अपने अपने विशिष्ट ढंग से बजाते हैं। इस प्रकार 'बाज' के और भेद भी बन जाते हैं परन्तु प्रायः इस प्रकार की विभिन्न शैलियों को "घराने" के नाम से पृथक कर दिया जाता है।

तोड़ा :—जिस प्रकार गायन में तानें ली जाती हैं, उसी प्रकार

सितार मे गत वजाते समय जो विविध स्वर-समूहो की ताने वजाई जाती हैं उन्हें तोडे कहते हैं।

भाला—सितार में चिकारी के तारों पर तर्जनी के मिजराव से अथवा कनिष्ठा के नख से ड़ ड़ा (अपकर्ष प्रहार वजाकर जो प्रयोग होता है उसे भाला कहते हैं भाले मे वाज के तार पर भी मिजराव का प्रहार होता जाता है जिसमे स्वर-रचनाएँ होती जाती हैं और बीच में चिकारी बजाई जाती है।

भाले की सहायता से एक स्वर को लंवा करना सभव होता है। भाले में चिकारी के बोल को ड़ा ड़ा कहते हैं और स्वरलिपि में स्वरों की पक्ति में भाले का चिह्न कुछ लोग 'A' कुछ लोग 'क' (काड-जिला भी चिकारी का एक नाम माना जाता है) कुछ लोग 'च' आदि लिखते हैं। इन चिन्हों के नीचे 'ड़ा' या 'रा' लिखा जाता है। कुछ लोग चिकारी का कोई विशेष चिन्ह न बना कर 'सां' लिखते हैं।

भाला वजाने के मुख्य दो प्रकार हैं (१) सुलट और (२) उलट। सुलट भाले में पहले वाज के तार पर 'दा' वजता है और उलट में उस पर पहले 'ड़ा' वजता है। उदाहरणार्थ सुलट भाला इस प्रकार वजा सकते हैं :—

सा क क क   रे क क क   ग क क क   म क क क
दा रा रा रा   दा रा रा रा   दा रा रा रा   दा रा रा रा

अथवा

सा नी ध नी सा क क क सा क क सा क क साक

दा दि दा रा दा रा रा रा दा रा रा दा रा रा दा रा इत्यादि।

और उलट भाला इस प्रकार वजता है :—

सा मा क क रे रे क क ग ग क क म म क क
रा दा रा रा रा दा रा रा रा दा रा रा रा दा रा रा

अथवा

सा नी ध नी सा सा क क सा मा क सा सा क साक
दा द्रि द्रि दा रा दा रा रा रा दा रा रा दा रा दा रा इत्यादि।

मींड :—अखंडित ध्वनि से एक स्वर से किसी दूसरे स्वर तक आकर्षण द्वारा जाने को मींड कहते हैं। मींड मुख्यतः दो प्रकार की मानी जाती है :—(१) अनुलोम मींड़ (२) विलोम मींड़। अनुलोम मींड वह होती है जिसमें मिजराव का आघात (प्रहार) करने के बाद किसी पड़दे पर तार खींचा जाय, जैसे सा के पड़दे पर अँगूठी रखे और दाहिने हाथ के मिजराव से 'दा' बजाये और तुरन्त बाँयें हाथ की उस अँगुली से तार खींचकर सा के पड़दे पर ही रे बजाये (अ सा रे मींड सहित)। विलोम मींड वह होती है जिसमें पहले तार को खींचकर तब मिजराव का प्रहार होता है, जैसे सा के पड़दे पर ही बिना तार बजाये उसे अन्गुल से खींचकर रे बजने योग्य स्थान तक ले जाय और तब दाहिने हाथ से मिजराव का प्रहार करे, और फिर तुरन्त तार को वापस ले आये (रे सा वि मींड सहित) अनुलोम मींड का चिह्न अ है और विलोम मींड का चिह्न वि है। मींड को ही दिलरुबा, इसराज या वेला आदि में सूत या घसीट कहते हैं। घसीट :—सितार में घसीट का अर्थ इसराज आदि के सूत अथवा घसीट से कुछ भिन्न है। एक स्वर से किसी अन्य स्वर तक बीच के स्वरों को छुआते हुए तेजी से अँगुली घसीटकर ले जाने को घसीट कहते हैं (देखिये पृष्ठ ५४ और ५५)।

लाग-डाट :—इन शब्दों के प्रयोग के विषय में अभी बड़ा भ्रम है। इनके लगभग तीन मत मिलते हैं :—

पहला मत :—किसी स्वर से किसी अन्य स्वर तक आरोही करते हुए बीच के स्वरों को छुआते हुए तेजी से जाने को लाग कहते हैं। अर्थात् आरोही की घसीट का ही दूसरा नाम लाग हुआ। अवरोही की घसीट को डाट कहते हैं।

दूसरा मत :—एक स्वर से दूसरे स्वर तक शीघ्रता से बीच के स्वरों को छोड़ते हुए उतरने अथवा चढ़ने को लाग कहते हैं। यह वास्तव में पूर्वोक्त घसीट का पर्यायी है। किसी स्वर को बीच में ही गुप्त रखने को डाट कहते हैं, जैसे सा से ग के पड़दे पर इस प्रकार के शीघ्रता से जाना कि अँगुली तार पर से न उठे, यह ऋषभ स्वर का डाट हुआ।

तीसरा मत :—तीसरे मत में 'पुकार'' का ही दूसरा नाम 'लाग डाट' है। पुकार का स्पष्टीकरण नीचे दिया जाता है।

पुकार :—किसी स्वर अथवा छोटे स्वर समुदाय को शीघ्रता से दोनों सप्तकों में बारी-बारी बजाने को पुकार कहते हैं जैसे सां सा, रें रे अथवा रेसारें—सा, गंरेंसां—गरेसा इत्यादि।

कृन्तन :—ऊँचे स्वर से उससे नीचे के स्वर अथवा स्वरों पर आते समय बायें हाथ की अँगुलियों से तार को झटके के साथ दबाकर छोड़ने से जो दो या अधिक स्वरों का द्रुत-प्रयोग होता है, उसी को कृन्तन कहते हैं। कृन्तन से एक स्वर का दूसरे स्वर से संबंध बना रहता है। कृन्तन दो स्वरों का (रे सा एक मिजराब में), तीन स्वरों का (रे सानी एक मिजराब में) और चार स्वरों का (रेसानीसा एक ही मिजराब में) होता है। वास्तव में ये तीनों कृतन्त क्रमशः जमजमा, मुर्की और गिटकिड़ी हैं जो स्फुरित गमक के तीन प्रकार प्रकार बतलाये गये हैं। कृतन्त का प्रयोग सितार-वादन को अत्यन्त सुन्दर बना देता है।

गमक :—एक विशेष प्रकार के स्वरों के कंपन से, जिसमे चित्त का रंजन होता है, गमक कहते हैं। गमक और उसके पंद्रह प्रकारों का वर्णन इस पुस्तक के तृतीय अध्याय में पृष्ठ ५१ से ५७ तक विस्तार सहित किया जा चुका है, अतः उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं। सितार-वादन में मुख्यतः प्राचीन कंपित, स्फुरित, आंदोलित, प्लावित, और उल्हासित गमकों का प्रयोग जाता है और ये प्रयोग भी इन प्राचीन नामों से न होकर आधुनिक नामों से होते हैं जैसे कंपित गमक का प्रयोग कंपन के नाम से, स्फुरित गमक का प्रयोग जमजमा, मुर्की और गिटकिड़ी के नाम से, आंदोलित गमक का प्रयोग आंदोलन के नाम से, प्लावित गमक का प्रयोग मींड के नाम से और उल्हासित गमक का प्रयोग केवल गमक कहकर होता है। (इन सभी शब्दों की परिभाषा और व्याख्या देखिए पृष्ठ ५१–५७ में)

आलाप और जोड़ :—सितार में गत बजाने से पूर्व राग का जो पूर्ण स्वर विस्तार किया जाता है, उसे आलाप कहते हैं। आलाप के मुख्य चार भाग माने जाते हैं जो गायन के चार भागों से कुछ समानता रखते हैं। ये भाग सामान्यतः स्थायी अंतरा, संचारी और आभोग कहलाते हैं। (१) स्थायी भाग में विलंबित लय का आलाप होता है जिसमें मींड, जमजमा, मुर्की, गिटकिड़ी आदि का प्रयोग होता है। इनमें भी मींड का महत्व विशेष रहता है। आलाप के स्थायी भाग में पहले मंद्र और मध्य के साथ साथ अणुमंद्र सप्तक में भी विस्तार करते हैं और बाद में थोड़ा विस्तार उत्तरांग अथवा तार सप्तक में भी होता है, (२) आलाप के दूसरे भाग, अंतरा में, लय बढ़ाकर मध्य कर दी जाती है और चिकारी का प्रयोग कुछ बढ़ना प्रारम्भ होता है। इस भाग में मींड आदि के साथ गमक का भी थोड़ा प्रारम्भ होता है और इस प्रकार इस भाग

में भी बहुधा तीनों सप्तकों का विस्तार होता है और तीनों का प्रयोग भी प्रारम्भ हो जाता है।

प्रायः आलाप के दूसरे और तीसरे भागों के आलाप को, जिसमें चिकारी का प्रयोग काफी होता है और जिसमें मध्य तथा-द्रुत लय में आलाप होता है; जोड़ का काल कहते हैं।

(३) आलाप के तीसरे भाग, संचारी, में लय द्रुत हो जाती है और चिकारी का प्रयोग और बढ़ा दिया जाता है अर्थात् इसमें झाले का भाव आने लगता है। इसमें गमक का प्रयोग विशेष होता है (उल्हासित गमक) संचारी में तानें भी काफी ली जाती हैं।

(४) आलाप के चौथे भाग, आभोग में लय द्रुत और बाद को उससे भी तेज कर दी जाती है और झाले का पूर्ण चमत्कार दिखलाया जाता है।

कुछ लोग सितार के पूरे आलाप को ही 'जोड़ का काम' कह देते हैं किंतु यह अधिक समुचित नहीं। वास्तव में संपूर्ण आलाप के दूसरे और तीसरे भागों में ही जोड़ का काम होता है क्योंकि उनमें चिकारी के प्रयोग के साथ आलाप होता है। अतः पूरे आलाप के चार भाग इस प्रकार पुकारे जा सकते हैं :—(१) स्थाई अथवा विलंबित आलाप (१) अंतरा अथवा मध्य जोड़ (३) संचारी अथवा द्रुत जोड़ और (४) आभोग अथवा झाला।

सितार के आलाप में भी बीच बीच में आलाप की सम दिखलाई जाती है।

बेला (वायलिन)

परिचय :—यद्यपि बेले से कुछ मिलते जुलते वाद्य प्राचीनकाल में भारतवर्ष में भी थे, किन्तु अपने आधुनिक रूप में यह पूर्णतः विदेशी वाद्य है जिसका आविष्कार यूरोप में हुआ। इटली के बेले

प्रसिद्ध है। यूरोप से ही यह वाद्य भारत में आया और आज इसका यहाँ अत्यधिक प्रचार हो गया है। भारत में बेला बजाने की मुख्य दो शैलियाँ मिलती हैं :—गायन-शैली (२) गत-शैली।

(१) गायन-शैली—में बेला बजाने वाले बेले के सिर को दाहिने पैर की एड़ी पर रखकर बजाते हैं जिससे स्वतन्त्रता या सरलता के साथ गमक मींड और तानों का प्रयोग हो सके। इस शैली में अधिकतर बेले में गीत बजाये जाते हैं और गायन के ढंग पर ही तान आलाप होते हैं। वास्तव में सब गज से बजने वाले वाद्य गायन की संगत करने के लिए विशेष उपयुक्त सिद्ध हुए हैं क्योंकि उनमें स्वरों की स्थिरता संभव है, जो सितार, आदि में नहीं। सारंगी, दिलरुबा और बेला, तीनों वाद्य संगत के लिये प्रयुक्त भी होते हैं। दक्षिण भारत में बेले पर गायन की संगत होती है। दक्षिण कर्नाटक संगीत में और हिन्दुस्तानी संगीत के बम्बई प्रदेश में तो गायन-शैली से ही बेला बजाया जाता है। उत्तर भारत में भी कुछ लोगों को छोड़कर सभी इस शैली का अनुसरण कर रहे हैं। (२) गत-शैली में सितार की गतों की भाँति बेले पर गतें बजाई जाती हैं और उनमें तोड़ों और मसलों तक का प्रयोग होता है। प्रायः इस शैली के वादक बेले को पैर पर न रखकर वाद्य कंधे और हनु-पटी के बीच में रखकर बजाते हैं और गज से सितार के बोलों को निकालने का प्रयास करते हैं। यह शैली प्रयाग के श्री गगन चन्द्र चटर्जी ने चलाई और अब कुछ स्थानों में यह प्रिय हो गई है। इस में गतकारी का चमत्कार अवश्य है। किन्तु रागदारी का आनन्द कम हो जाता है। राग की पवित्रता की रक्षा भी कठिन हो जाती है। गत-शैली वाले खड़े होकर भी बेला बजा सकते हैं जैसा कि यूरोप में प्रायः होता है।

वास्तव में दोनों शैलियों में गुण-दोष हैं। गत-शैली वाले

वायलिन
फिंगरबोर्ड
खूंटी
टेलपीस
बटन
रिब
गज
ब्रिज

शास्त्रीय संगीत के साथ संगत नहीं कर सकते। सितार की भाँति वेला में दा और रा आदि का स्पष्ट स्थान नहीं है और न उस प्रकार की ही सुविधा है, अतः सितार के जोड़-आलाप, गत-तोड़े और झाले आदि वेलें में उतनी सुन्दरता से नहीं बज सकते। गायन शैली वाले संगीत में निपुण हो सकते हैं किन्तु सोलो कार्यक्रम में गीत बजाना एक अस्वाभाविक कार्य होता है क्योंकि गीत के शब्द तो उसमें निकलते नहीं। गायन-शैली में राग का विस्तार बहुत सुन्दर हो सकता है यद्यपि गतकारी का लय-वैचित्र्य और चमत्कार उसमें नहीं बन पाता। यदि दोनों शैलियों अर्थात् वेले के बाज का समुचित सम्मिश्रण किया जाय तो वेला पर सोलो बजाने की एक अत्यन्त सुन्दर शैली बन सकती है।

अंग-वर्णन—(१) वेली—यह वेले की बाडी शरीर के ऊपर का हिस्सा है जिस पर घुरच रक्खा जाता है और जो बजाते समय आँख के सामने रहता है। (२) रिब्ज बाडी के बगल की लकड़ी है, जिसमें अनेक टुकड़े जुड़े रहते हैं। रिब्ज वेले के चारों ओर जाते हैं।

(३) ब्रिज अथवा घुरच—वेली पर रक्खा हुआ लकड़ी का एक पतला टुकड़ा जो एक विशेष आकार का होता है और जिस पर से होकर चारों तार जाते हैं। (४) साउन्ड होल्ज (सूराख)—वेली में ब्रिज की दोनों ओर एक एक अंग्रेजी अक्षर एफ की शक्ल का सूराख होता है जिससे ध्वनि के प्रस्तार में सहायता होती है। (५) साउन्ड पोस्ट—वेले के बाडी के भीतर ब्रिज के नीचे पेंसिल के बराबर मोटी लकड़ी का एक टुकड़ा खंभे का एक टुकड़ा खंभे की भाँति खड़ा रहता है, जिसके सहायता से ध्वनि वेले के प्रत्येक अङ्ग में पहुंच जाती है। (६) टेलपीस—(अथवा तारगहन) यह छोटा एलका टुकड़ा जिसमें चारों तारों के छोर अटकाने के लिए छोटे

छेद होते हैं और जो बाजे के पीछे के भाग में एक आँकड़े अथवा बटन में ताँत के टुकड़े की सहायता से बँधा रहता है। टेलपीस देखने में कुछ कुछ जिह्वा के आकार का होता है। इसलिए कुछ लोग उसे 'टंग' कहते हैं। (७) बटन—यह आँकड़ा या हुक जिसमें टेलपीस अटकाया बाँधा जाता है। (८) फिंगर बोर्ड अथवा अंगुलिपटरी—आबनूस का बना हुआ लंबा टुकड़ा जिस पर तार दबाते हुए अंगुलियाँ चलाई जाती हैं। फिंगर-बोर्ड के ऊपर-ऊपर हो र तार टेलपीस से खूँटियों तक जाते हैं (९) नेक अथवा गर्दन—फ़िंगर-बोर्ड का पिछला भाग जिस पर हथेली रहती है (१०) नट अथवा अटी—फिंगर-बोर्ड के एक किनारे पर तार जिस टुकड़े पर होते हुए खूँटियों तक जाते हैं वह आबनूस का टुकड़ा नट कह-लाता है। (११) पेग बाक्स अथवा सिरा—वह ऊपर का भाग जिसमें खूँटियां रहती हैं और जिसके एक छोर पर नट और दूसरे छोर पर चक्कर सा बना रहता है (स्क्रॉल)। (१२) पेग अथवा खूँटियां—लकड़ी की चाबियां जिसमें तार बँधे रहते हैं और जिनके घुमाने से तारों के स्वर चढ़ाये-उतारे जाते हैं। (१३) एडजस्टर—टेलपीस में चारों तारों पर लगे हुए छोटे छोटे स्क्रू, जिनसे स्वर थोड़ा चढ़ाये और उतारे जाते हैं। कुछ वेलों में खूँटियों के स्थान पर बड़े स्क्रू होते हैं। (१४) चिनरेट—एक टुकड़ा जिस पर ठोढ़ी रखी जाती है। यह पसीने से बाजे को बचाने के लिये होता है। (१५) तार—वेल में चार तार होते हैं। यूरोप में तो ताँत के तारों का प्रयोग अधिक होता है किंतु गमक, मींड व तानों के प्रयोग की सुविधा के लिए भारत में लोह (फौलाद या स्टील) के तार प्रयुक्त होते हैं। परन्तु पहले तीन लोहे के तारों पर सूक्ष्म चांदी या एलु-मिनियम के तार लपेटे रहते हैं। पहला तार कुछ मोटा होता है। चौथा तार पतला और फ़ौलाद का होता है। अधिकतर पहले और

इसराज
खूँटी
तारगहन
अटी
पड़दा
तरफ़ तार
घुरच
खाल
कील
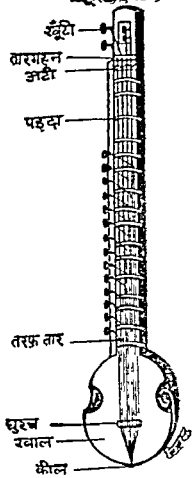
दूसरे तार 'सिलवर वायर' और-तीसरा तार 'एलुमिनियम-वायर और चौथा 'स्टील वायर' होता है।

गज के मुख्य ५ अंग होते हैं। (१) स्टिक—लकड़ी की छड़ी (२) हेयर अथवा बाल—ये घोड़े के बाल होते हैं जो घोड़ी की एक ओर 'नट' मे बँधे होते हैं और दूसरी ओर छड़ी के 'हेड' में बँधे रहते हैं। (३) हेड—गज का वह सिरा जिधर स्क्रू नहीं होता अर्थात् जिस सिरे पर हाथ से गज को पकड़ते हैं। उसकी उलटी ओर का सिरा। (४) स्क्रू—जिससे बालों को कसा या ढीला किया जाता है। (५) नट—स्क्रू की ओर के ही सिरे मे एक तारों को बाँधने का प्रबन्ध होता है। गज के बालों मे रेज़िन (अथवा राजन) लगाया जाता है जिससे बालों में खुरदरापन आता है और तारों पर चलाने से रगड़ से ध्वनि उत्पन्न होती है।

तार-मिलाना :—पाश्चात्य प्रणाली में चार तार—जी, डी, ए और ई के होते हैं जो म, सा, प रें के समकक्ष समझे जा सकते हैं। भारत में अधिकांश संगीतज्ञ इसी क्रम से चारों तार मिलते हैं। किंतु कुछ लोग स प सा प में चारों तार मिलाकर बजाते हैं। एक तीसरी विधि प सा प सां मे मिलाने की भी है और आज इस विधि का प्रचार बढ़ भी रहा है (इसी को सा म सां म भी मान सकते हैं। म सा रें मे मिलाने वाले भी कोमल रे के रागों में चौथा तार सां में मिला लेते हैं।

इसराज

इसका तुंबा लकड़ी का और छोटा होती है और उसकी तबली खाल से मढ़ी होती है, जैसे सारंगी में डॉड मे सितार की तरह पड़दे लगे रहते हैं जो ताँत से कसे जाते हैं। इसप्रकार सारंगी और सितार, दोनों की कुछ बातें लेकर यवनकाल में ही आगे चलकर इसराज बनाया गया है। इसी को दिलरुबा भी कहते हैं। दिलरुबा

अनेक प्रकार के मिलते हैं किन्तु भेद केवल रूप में थोड़ा बहुत है। कहते हैं कि दिलरुबा बंबई, पंजाब और संयुक्तप्रांत में बजता है और उसके नीचे का भाग सारंगी की चपटी शक्ल का होता है, और इसराज अधिकतर बंगाल में बजाया जाता है और उसके नीचे का भाग कुछ गोलाई लिए होता है। किंतु केवल नीचे के भाग की शक्ल के भेद से इसराज और दिलरुबा दो पृथक वाद्य नहीं माने जा सकते। वास्तव में ये एक ही वाद्य के दो नाम हैं। दिलरुबा नाम अधिक प्राचीन जान पड़ता है। दिलरुबा में तरफ के तार प्रायः इसराज से अधिक होते हैं।

इसराज के मुख्य अंग ये हैं :—(१) तुंबा, खाल से मढ़ा हुआ (२) लंगोट अथवा कील, तार बाँधने के लिए (३) खूँटियाँ, तारों के दूसरे छोरों को बांधने के लिए (४) डांड जिसमें पड़दे बँधे रहते हैं (५) घुरच अथवा घोड़ी—खाल की बनी तबली पर रक्खा हुआ टुकड़ा जिस पर से तार जाते हैं (६) अटी—सिरे में लगी पट्टी जिस पर से होकर तार, तारगहन के भीतर से खूँटियों तक जाते हैं (७) तारगहन—जिसमें तार पिरोये जाकर खूँटी तक जाते हैं (८) तार—मुख्य तार चार होते हैं—पहला बाज का तार, जो मंद्र-मध्यम में मिलता है। दूसरे और तीसरे तार मंद्र षड्ज में मिलते हैं। उन्हें जोड़ी के तार कहते हैं। चौथा तार मंद्र पंचम से मिलता है। इस प्रकार बाज के तार से प्रारम्भ करके चारों तार म़ सा सा प़ में मिलते हैं। इसमें मतभेद भी मिलते हैं। कुछ वादक प़ सा प़ सा में इसराज मिलते हैं कुछ म़ म़ प़ . प़ में और कुछ म़ सा सा में भी। (९) तरफ के तार :—ये मुख्य तारों की नीचे होते हैं और इनकी संख्या १४ और २२ के बीच में होती हैं और उन्हें बजाये जाने वाले राग के स्वरों के अनुकूल मिलाया जाता है। (१०) पड़दे—पड़दे चल ठाट में तो १६ और १९ के बीच में होते हैं। १६

अनेक प्रकार के मिलते हैं किन्तु भेद केवल रूप में थोड़ा है। कहते हैं कि दिलरुबा बंबई, पंजाब और संयुक्तप्रांत में अधिक बजता है और इसके नीचे का भाग नारंगी की चपटी शक्ल का होता है, और इसराज अधिकतर बंगाल में बजाया जाता है और उसके नीचे का भाग कुछ गोलाई लिए होता है। किंतु केवल नीचे के भाग की शक्ल के भेद से इसराज और दिलरुबा दो पृथक वाद्य नहीं माने जा सकते। वास्तव में ये एक ही वाद्य के दो नाम हैं। दिलरुबा नाम अधिक प्राचीन जान पड़ता है। दिलरुबा में तरफ के तार प्रायः इसराज से अधिक होते हैं।

इसराज के मुख्य अंग ये हैं:—(१) तुंबा, खाल से मढ़ा हुआ (२) लँगोट अथवा कील, तार बाँधने के लिए (३) खूँटियाँ, तारों के दूसरे छोरों को बांधने के लिए (४) डांड जिसमें पड़दे बँधे रहते हैं (५) घुरच अथवा घोड़ी—खाल की बनी तबली पर रक्खा हुआ टुकड़ा जिस पर से तार जाते हैं (६) अटी—सिरे में लगी पट्टी जिस पर से होकर तार, तारगहन के भीतर से खूंटियों तक जाते हैं (७) तारगहन—जिसमें तार पिरोये जाकर खूँटी तक जाते हैं (८) तार—मुख्य तार चार होते हैं—पहला बाज का तार, जो मंद्र-मध्यम में मिलता है। दूसरे और तीसरे तार मंद्र षड्ज में मिलते हैं। उन्हें जोड़ी के तार कहते हैं। चौथा तार मंद्र पंचम से मिलता है। इस प्रकार बाज के तार से प्रारम्भ करके चारों तार म़ सा सा प़ में मिलते हैं। इसमें मतभेद भी मिलते हैं। कुछ वादक प़ सा प़ सा में इसराज मिलते हैं कुछ म़ स़ प़ . प़ में और कुछ म़ सा सा में भी। (९) तरफ के तार:—ये मुख्य तारों की नीचे होते हैं और इनकी संख्या १४ और २२ के बीच में होती है और उन्हें बजाये जाने वाले राग के स्वरों के अनुकूल मिलाया जाता है। (१०) पड़दे—पड़दे चल ठाट में तो १६ और १६ के बीच में होते हैं। १६

तबला
गुड़री
दाहिना
बांया
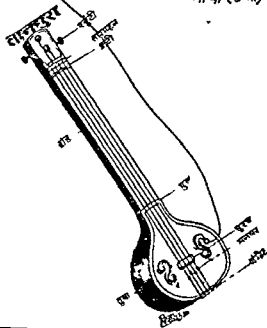
मे म, प, ध, नी, नी, सा रे. ग, ग, मं, प, ध, नी सां रे, ग के पड़दे होते हैं। १७ पड़दों वाले इसराज़ में ध जुड़ जाता १८ पड़दों में नी जुड़ जाता है और १६ में ग में भी जुड़ जाता।(११) गज—जिसमें घोड़े के बाल लगे होते हैं और जिसमें राजन अथवा बिरोजा लगाकर इसराज बजाया जाता है।

इस प्रकार सारङ्गी और सितार के अनुकरण पर इसराज अथवा दिलरुबा बना और इसराज को हम दिलरुबा का ही एक बङ्गाल प्रकार मान सकते हैं। इस वाद्य में भी गायन-शैली और गत शैली, दोनों का प्रयोग होता है पर संगत के अधिक उपयुक्त होने से प्रथम शैली ही अच्छी लगती है, यद्यपि गतकारी के समुचित अंश को लाने से चमत्कार बढ़ जाता है और अधिक हानि भी नहीं होती।

तबला

परिचय और इतिहास :—भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही अवनद्ध वाद्यों का विशेष महत्व रहा है। अवनद्ध से तात्पर्य उन वाद्यों से है जिनमें चमड़ा मढ़ा रहता है और उस पर हाथ अथवा लकड़ी से आघात करने से ध्वनि उत्पन्न होती है। वैदिक काल से ही इस प्रकार के वाद्य प्रचलित रहे हैं, जैसे दुन्दभी, आदम्बर, भूमि दुंदुभी और वानस्पति आदि। रामायण और महाभारत में अनेक वाद्यों का उल्लेख है जैसे दुंदुभी, भेरी, मृदंग, डिमडिम आदि। एक किवदंती है कि ब्रह्मा ने इस प्रकार के वाद्य का आविष्कार किया। त्रिपुरासुर को मारने पर शिव ने जो आनन्द मनाते हुए अपना तांडव नृत्य किया उसी के लिए ब्रह्मा ने इसकी रचना की और कहते हैं कि सब से पहले गणेश जी ने जमीन में गड्ढा खोद कर उस पर उस राक्षस की खाल मढ़कर वादन किया। इस कथन

में कहाँ तक सत्य है, कहना कठिन है, किंतु यह निश्चित है कि भारत में अति प्राचीनकाल से ही तबला अथवा मृदंग प्रभृति वाद्य थे। ढोल, डमरू आदि भी प्राचीन नाम हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि प्राचीनकाल में 'दुर्दर' नामक एक वाद्य था जिसकी शक्ल कुछ कुछ आधुनिक तबले की भांति थी और उनका कहना है कि इसी की नकल करके तबला वाद्य बना है। दाहिने तबले की शक्ल का एक प्राचीन वाद्य चित्रों में मिला भी है। अधिकांश विद्वानों के मत में अलाउद्दीन खिलजी के समय के अमीर खुसरो ने ही पखावज को बीच से काटकर तबला वाद्य बनाया और क्रमश उसमें सुधार व उन्नति की। कुछ स्थानों में (पञ्जाब आदि) आज भी बायें पर आटा लगाने का रिवाज है। कुछ भी हो, इतना निश्चित है कि जिस रूप में आज तबला मिलता है वह यवनकाल में ख्याल गायकी के साथ साथ ही विकसित हुआ है। कुछ विद्वान फारस के 'तब्ल' नक्कारा शब्द से तबले का सबध जोडते हैं। आधुनिक काल में दक्षिण कर्नाटक सगीत में अवनद्ध वाद्य में मुख्य प्रचलित वाद्य मृदंगम, मर्दलम, शुद्धमद्दलम हैं और उत्तर हिन्दुस्तानी सगीत में पखावज और तबला है। पखावज मृदग का ही एक रूप है।

तबले के अग —तबले के मुख्य अग तो दो हैं (१) तबला अथवा दाहिना और (२) डग्गा अथवा बाया। दाहिने तबले के विविध अग इस प्रकार हैं —

(१) लकड़ी—तबले का मुख्य शरीर जो भीतर से खोखला होता है। अच्छे तबले बीजा साग, सीसम, खैर और चदन की लकड़ी के होते हैं (२) पूड़ी—तबले की की लकड़ी का मुँह

(३)—स्याही—पूड़ी के बीच में चंद्राकार जो काला मसाला लगा रहता है। (४) चाँटी—पूड़ी के किनारे किनारे चारों ओर जो खाल की पतली पट्टी से होता है। (५) लव—चांटी और स्याही के बीच का स्थान (६) गजरा—पूड़ी के चारों ओर का चमड़े का हार जिसमें १६ छेद या घर होते हैं जिनसे बीच से बद्धी जाती है। गजरे द्वारा ही पूड़ी बँधी रहती है और गजरे पर हथोड़ी से आघात करके स्वर ऊँचा नीचा किया जाता है। (७) गट्टे—८ छोटे लकड़ी के टुकड़े जो बद्धियों के नीचे दबे रहते हैं और जिन्हें ऊपर नीचे खिसकाने से स्वर नीचे ऊपर हो जाता है। (८) गुड़री—वह चमड़े का छोटा गजरा जो तबले की लकड़ी के नीचे होता है और जिसके सहारे तबला जमीन पर टिकता है (९) बद्धी चमड़े की डोरी जो गट्टों को दबाये अथवा कसे रहती है और जो ऊपर और नीचे के गजरों में बँधी रहती है।

डग्गे के अंग :—कूड़ी, जो अधिकतर मिट्टी की होती हैं परन्तु टूटने के डर से तांबे की कूड़ियां भी प्रयुक्त होने लगी हैं। लकड़ी के बायें भी मिलते हैं, विशेषकर पञ्जाब में। पञ्जाब में बायें पर स्याही के स्थान आटा लगाने का रिवाज है। (२) पूड़ी—कूड़ी पर मढ़ी हुई पूरी खाल जिसके अंतर्गत स्याही और चांटी भी आ जाती है। (३) स्याही—बायें में मसाला अथवा स्याही एक ओर को चंद्राकार शक्ल की होती है, तबले की भांति बीच में नहीं। (४) चांटी—पूड़ी के किनारे किनारे की पट्टी। ५) लव—चांटी और स्याही के बीच का स्थान। इसे अधिकतर लव न कह कर केवल कर देते हैं। (६) गजरे—ऊपर बड़ा गजरा होता है और नीचे छोटा गजरा अथवा गुड़री। ७) डोरी—बायें में अधिकतर डोरी प्रयुक्त होती है जिन्हें छल्लों से कसते हैं। कुछ बायों में चमड़े की बद्धी ही लगती है और छल्ले नहीं होते।

में कहाँ तक सत्य है, कहना कठिन है, किंतु यह निश्चित है कि भारत में अति प्राचीनकाल से ही तबला अथवा मृदंग प्रभृति वाद्य थे। ढोल, डमरू आदि भी प्राचीन नाम हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि प्राचीनकाल में 'दुर्दर' नामक एक वाद्य था जिसकी शक्ल कुछ कुछ आधुनिक तबले की भांति थी और उनका कहना है कि इसी की नकल करके तबला वाद्य बना है। दाहिने तबले की शक्ल का एक प्राचीन वाद्य चित्रों मे मिला भी है। अधिकांश विद्वानों के मत मे अलाउद्दीन खिलजी के समय के अमीर खुसरो ने ही परवावज को बीच से काटकर तबला वाद्य बनाया और क्रमशः उसमें सुधार व उन्नति की। कुछ स्थानों में (पञ्जाब आदि) आज भी बायें पर आटा लगाने का रिवाज है। कुछ भी हो, इतना निश्चित है कि जिस रूप में आज तबला मिलता है वह यवनकाल में ख्याल गायकी के साथ साथ ही विकसित हुआ है। कुछ विद्वान फारस के 'तब्ल' नक्कारा शब्द से तबले का संबंध जोड़ते हैं। आधुनिक काल में दक्षिण कर्नाटक संगीत में अवनद्ध वाद्य में मुख्य प्रचलित वाद्य मृदंगम, मर्दलम, शुद्धमद्दलम हैं और उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में पखावज और तबला है। परावज मृदंग का ही एक रूप है।

तबले के अंग :—तबले के मुख्य अंग तो दो हैं (१) तबला अथवा दाहिना और (२) डग्गा अथवा बायां। दाहिने तबले के विविध अंग इस प्रकार हैं :—

(१) लकड़ी—तबले का मुख्य शरीर जो भीतर से खोखला होता है। अच्छे तबले बीजा साग, सीसम, खैर और चंदन की लकड़ी के होते हैं। (२) पूड़ी—तबले की की लकड़ी का मुँह अर्थात ऊपरी भाग जिससे ढँका रहता है वह स्याही, चांटी और खाल अथवा लव आदि से संयुक्त भाग पूड़ी कहलाता है।

(३)—स्याही—पूड़ी के बीच में चंद्राकार जो काला मसाला लगा रहता है। (४) चांटी—पूड़ी के किनारे किनारे चारों ओर जो खाल की पतली पट्टी से होता है। (५) लव—चांटी और स्याही के बीच का स्थान (६) गजरा—पूड़ी के चारों ओर का चमड़े का हार जिसमें १६ छेद या घर होते हैं जिनसे बीच से बद्धी जाती है। गजरे द्वारा ही पूड़ी बँधी रहती है और गजरे पर हथौड़ी से आघात करके स्वर ऊँचा नीचा किया जाता है। (७) गट्टे—८ छोटे लकड़ी के टुकड़े जो बद्धियों के नीचे दबे रहते हैं और जिन्हें ऊपर नीचे खिसकाने से स्वर नीचे ऊपर हो जाता है। (८) गुड़री—वह चमड़े का छोटा गजरा जो तबले की लकड़ी के नीचे होता है और जिसके सहारे तबला जमीन पर टिकता है (९) बद्धी चमड़े की डोरी जो गट्टों को दबाये अथवा कसे रहती है और जो ऊपर और नीचे के गजरों में बँधी रहती हैं।

डग्गे के अंग :—कूड़ी, जो अधिकतर मिट्टी की होती हैं परन्तु टूटने के डर से तांबे की कूड़ियां भी प्रयुक्त होने लगी हैं। लकड़ी के बायें भी मिलते हैं, विशेषकर पञ्जाब में। पञ्जाब में बायें पर स्याही के स्थान आटा लगाने का रिवाज है। (२) पूड़ी—कूड़ी पर मढ़ी हुई पूरी खाल जिसके अंतर्गत स्याही और चांटी भी आ जाती है। (३) स्याही—बायें में मसाला अथवा स्याही एक ओर को चंद्राकार शक्ल की होती है, तबले की भांति बीच में नहीं। (४) चांटी—पूड़ी के किनारे किनारे की पट्टी। ५) लव—चांटी और स्याही के बीच का स्थान। इसे अधिकतर लव न कह कर केवल कर देते हैं। (६) गजरे—ऊपर बड़ा गजरा होता है और नीचे छोटा गजरा अथवा गुड़री। ७) डोरी—बायें में अधिकतर डोरी प्रयुक्त होती है जिन्हें छल्लों से कसते हैं। कुछ बायों में चमड़े की बद्धी ही लगती है और छल्ले नहीं होते।

तबला मिलाना :—तबले को अधिकतर षड्ज अथवा पंचम स्वर में मिलाया जाता है। जिस राग में पञ्चम वर्ज्य होता है उसमें यदि मध्यम लगता है तो तबला मध्यम स्वर में मिलाया जाता है। टीप के सुर में मिला हुआ तबला बहुत मजा देता है। पूड़ी के किनारे की गूंथन अथवा गजरे पर हथौड़ी से चोट देकर तबला मिलाया जाता है। स्वर चढ़ाने के लिए गूँथन के ऊपर चोट दी जाती है और स्वर उतारने के लिए गूंथन के नीचे से ऊपर की ओर चोट दी जाती है। मिलाने के दो क्रम प्रचलित हैं--(१) पहले किसी एक घर को मिलाकर, फिर उसकी दूसरी उलटी ओर या ६ वाँ घर मिलाते हैं। फिर ५ वाँ और उसके विपरीत मिलाते हैं। अन्त में तबले के सभी घरों को घुमाते हुए पूर्णतः ठीक ठीक मिला लिया जाता है। (२) किसी भी घर से प्रारम्भ कर के बारी बारी तबले को घुमाते हुए सभी घरों को मिलाते जाते हैं। दोनों विधियाँ ही ठीक हैं। तबला मिलाने से पूर्व गायक अथवा वादक के स्वर को समझ लेना चाहिये। फिर, यदि अधिक अंतर हो, तो गट्टों को ढीला करके अथवा कस के तबले के स्वर को गायक वादक के निकट लाना चाहिये, तब ऊपर लिखी विधियों से चांटी के पास गजरे अथवा गूंथन पर चोट देकर तबले को ठीक ठीक मिलाना चाहिये। कभी कभी तबलों में यह दोष होता है कि उनकी चांटी और लय अर्थात् सांस एक ही स्वर नहीं देती। मिलाते समय सांस की विशेष सहायता लेनी चाहिये। ऊँचे स्वर के लिए छोटे मुँह का तबला और नीचे स्वर के लिए बड़े मुँह का तबला लेना चाहिये स्याही को पतली करने से स्वर ऊँचा हो जाता है। बाँया किसी विशेष स्वर में नहीं मिलाया जाया —उसे केवल कस लिया जाता है। (छल्लों द्वारा या गजरे पर चोट देकर) कभी-कभी षड्ज अथवा मद्र पञ्चम में बांया मिला लेते हैं।

तबले के बाज :—यद्यपि अमीर खुसरो को तबले का रचयिता कहते हैं किन्तु पहला प्रसिद्ध तबलिया, जिसका पता चलता है, दिल्ली का कल्लू खाँ था। कल्लू खाँ के दो मुख्य शिष्य कहे जाते हैं—बरसू खाँ और मोदू खाँ। इन्हीं ने तबले का बहुत प्रचार किया। पहले हिंदू तबलिये बनारस के पं० राम सहाय जी कहे जाते हैं जो मोदू खाँ के शिष्य थे। इस प्रकार तबले का प्रचार बढ़ा। बाद में तबले के मुख्य दो बाज (अथवा बजाने की शैली) चल पड़ी :—(१) दिल्ली अथवा पश्चिमी बाज और (२) पूरबी बाज। पश्चिमी बाज अधिकतर दिल्ली और पञ्जाब प्रांत में चला और पूरबी बाज लखनऊ और बनारस में। इसी से आगे चलकर तबलिये के मुख्य घराने बन गये (१) दिल्ली घराना (२) पञ्जाब घराना (३) लखनऊ घराना और (४) बनारस घराना। सभी घरानों की निजी विशेषताएँ बन गई और इसीलिए इन चार घरानों के चार पृथक बाज भी कहे जाने लगे। किन्तु मुख्य बाज दो ही हैं—दिल्ली बाज और पूरब बाज। दिल्ली बाज का प्रधान केंद्र दिल्ली और पूरब बाज का प्रधान केंद्र बनारस माना जाता है।

आधुनिक काल में दिल्ली बाज के खलीफा नत्थू खाँ साहब एक अत्यन्त प्रसिद्ध तबलिया हो गए हैं, जिनका कुछ वर्ष पूर्व देहांत हो गया। आजकल दिल्ली में काले खाँ एक वृद्ध तबलिया हैं जिनके विषय में कहा जाता है कि उनके पास दिल्ली का सारा तबला मौजूद है। इस समय दिल्ली बाज के सबसे प्रसिद्ध तबलिया प्रो० हबीब उद्दीन कहे जा सकते हैं जो भारतवर्ष की लगभग सभी बड़ी कानफ्रेन्सों में बुलाये जाते हैं। वे संगत में भी निपुण हैं। दिल्ली के ही एक मसीत खाँ साहब आजकल कलकत्ते में हैं। वे बहुत प्रसिद्ध खलीफा हैं और दिल्ली का तबला इस समय उनके

पास भरपूर है। मसीतगवां के लड़के प्रो० करामात खां भी कलकत्ते में रहते हैं और इन्होंने भी अनेक कानफरेन्सों में नाम कमाया है।

पूरबी बाज के एक खलीफा मुन्ने खां लखनऊ में थे जिनके छोटे भाई आबिद हुसैन लखनऊ के एक अत्यन्त प्रसिद्ध तबलिया हो गए हैं। आबिद हुसैन साहब का भी देहान्त कुछ वर्ष पूर्व हो गया। आजकल इनके खानदान के तबलिया वाजिद हुसैन खाँ लखनऊ में हैं। बनारस में सूरदास (नन्नूजी) और उनके शिष्य श्री मिस्क्रूजी महाराज प्रसिद्ध तबलिये हो गए हैं और इन्हीं मिस्क्रू जी के शिष्य श्री शांवा प्रसाद (गुदई महाराज) आज भी बनारस के एक प्रसिद्ध तबलिया माने जाते हैं। कुछ वर्ष पूर्व बनारस के श्री वीरू मिश्र एक प्रसिद्ध तबलिया थे, जिनकी धाक कानफरेन्सों में सबसे अधिक जमी थी और वे संगत के तो देवता कहे जाते थे। आजकल बनारस में प्रसिद्ध तबलिये श्री कंठे महाराज और श्री अनोखेलालजी हैं जिनकी धाक सभी कानफरेन्सों में जम चुकी है।

आजकल एक और प्रसिद्ध तबलिया हैं जिनका नाम अहमद जान थिरकुआ है। इनका नाम भी बहुत हो गया है और इनकी विशेषता यह है कि इनके भीतर दिल्ली बाज और पूरब बाज दोनों का अंग है। ये दिल्ली के 'सोलो' और पूरब की परनें-टुकड़ों में तो दक्ष हैं ही, साथ ही इनमें संगत का भी चमत्कार है। इसीलिये वे चारों पट के तबलिये कहे जाते हैं।

दिल्ली बाज और पूरब बाज में मुख्य भेद यही है कि दिल्ली बाज में एक तो चाँटी का काम अधिक होता है, लव का काम कम और दूसरे उसमें प्रायः दो अंगुलियाँ तर्जनी या मध्यमांगुलि का ही अधिक प्रयोग होता है। अतः दिल्ली बाज अधिक कोमल होता है, बंद बोली के कारण। पूरब बाज में लव का अधिक प्रयोग और

अंगुलियों का प्रयोग होता है। यह वाज जोर दार होता है, इन बोलों की अधिकता के कारण। बनारस के अथवा पूरब वाज में सोलो (मुक्त वादन) का वह आनन्द नहीं जो दिल्ली अथवा पश्चिमी वाज में होता है। दिल्ली वाज में, सोलों के प्रारम्भ में पेश कारा अथवा कायदा पूरी तरह से वरता जाता है, जबकि पूरब में टुकड़ों और परनों से ही बजाना प्रारम्भ कर दिया जाता है। संगत के क्षेत्र में दोनों का अपना-अपना विशेष स्थान है।

ताल और उसके दस प्राण

संगीत के क्षेत्र में समय की गति का लय और समय नापने की इकाई को मात्रा कहते हैं। बहुत धीमी लय को विलंबित, तेज लय को द्रुत और साधारण लय को मध्य लय कहते हैं, जो न तेज हो और न बहुत धीमी। प्रायः एक मात्रा को एक सेकंड का माना गया है किंतु व्यवहार में हम उसे छोटा बड़ा कर लिया करते हैं। विभिन्न मात्राओं के समूह को ताल कहते हैं, जो संगीत में समय नापने का साधन होता है। ताल के भीतर कुछ मात्राओं के छोटे समूहों को विभाग कहते हैं और प्रत्येक विभाग की प्रारम्भिक मात्रा पर ताली या खाली पड़ती है। खाली पर हाथ नीचे झुका देते हैं, हाथ से ताली नहीं देते। १ ली मात्रा की ताली को सम कहते हैं जहाँ गायन-वादन आदि में सबसे अधिक जोर पड़ता है।

ताल के दस प्राण माने गये हैं:—काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति और प्रस्तार। वास्तव में इन शब्दो का प्राचीन संगीत में और आधुनिक कर्नाटक संगीत में तो प्रयोग मिलता है किन्तु आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में इनमें से अधिकांश का प्रयोग मिट सा गया है किन्तु फिर भी इनके भावों का स्थान हिन्दुस्तानी संगीत में स्वीकार करने में आपत्ति नहीं है। अतः दसों प्राणों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है:—

(१) काल:—गाने, बजाने अथवा नाचने में जो समय व्यतीत होता है उसे काल कहते हैं। ताल के एक आवर्त का समय, पूरी स्थायी अंतरे का समय अथवा विभिन्न विभागों या मात्राओं का समय, ये सभी काल के क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं।

(२) मार्ग :—ताल के रास्ते को मार्ग कहते हैं जिसका अर्थ यह है कि ताल में प्रमाण-मात्रा (मात्रा की इकाई) कितनी बड़ी मानी गई है और उसके अनुसार उसके विभिन्न अंग कितनी २ मात्राओं के हैं और ताली, खाली आदि कितनी कितनी दूर पर आती हैं, इत्यादि। दक्षिण कर्नाटक संगीत में आज भी यह स्वीकिया गया है कि प्राचीन काल में मात्रा के प्रमाण को बदल कर और साथ ही साथ किसी मुख्य अंग (विभाग) की मात्राओं की संख्या में परिवर्तन करके विभिन्न ताल-पद्धतियाँ अथवा विभिन्न तालों की रचना होती थी। उदाहरणार्थ 'अक्षरकाल' मात्रा का एक छोटा प्रमाण था जिसके आधार पर कर्नाटक ३५ तालों की पद्धति बनी और चार अक्षर कालों के बराबर एक 'मात्रा' मानी गई जिसके आधार पर (अर्थात् मात्रा के जिस बड़े प्रमाण से) १०८ तालों की पद्धति अथवा कुछ अन्य पद्धतियाँ बनी थीं। आधुनिक कर्नाटक ३५ तालों की रचना में लघु (=।) की मात्राएँ बदलती हैं।

(३) क्रिया :—ताल को हाथ पर दिखलाने की विधि को क्रिया कहते हैं। मुख्य क्रियायें तो दो होती हैं (१) एक सशब्द क्रिया, जिसमें दोनों हाथों से ताली दी जाती है और (२) निःशब्द क्रिया, जिसमें ताली न देकर अँगुलियों अथवा दाहिने हाथ को किसी ओर मुकाकर या हिलाकर मात्राएँ गिनी जाती हैं अथवा विभाग दिखलाये जाते हैं। हिन्दु संगीत में खाली का विभाग अलग होता है और खाली की मात्रा पर हाथ को प्रायः दाहिनी ओर हिला

ते हैं। कर्नाटक संगीत में खाली को विसर्जितम् कहते हैं और वह विभाग की प्रारम्भिक मात्रा पर नहीं होती वरन् वह विभाग के बीच की मात्राओं को दिखाने के लिए प्रयुक्त होती है। विसर्जितम् तीन प्रकार की होती है (१) पताकं, जिसमें हाथ को ऊपर उठाते हैं (२) कृष्य, जिसमें हाथ को बाईं ओर झुकाते हैं और(३) सर्पिणि, जिसमें हाथ को दाहिनी ओर झुकाते हैं। अँगुलियों का का प्रयोग करते समय प्रत्येक अँगुली एक-एक मात्रा की होती है।

(४) अंग :—ताल के विभागों को अंग कहते हैं। विभिन्न तालों में विभिन्न मात्राओं के विभाग होते हैं। कर्नाटक संगीत में मुख्य ६ अंग माने गये हैं और उनकी मात्राएँ तथा उनके चिह्न निश्चित हैं, यथा :—

अंग (१) अणुद्रत.........◡......अक्षरकाल १
,, (२) द्रुत ....°...... ,, २
,, (३) लघु ....|...... ,, ४
,, (४) गुरु ....8या S... ,, ८
,, (५) प्लुत ....३या8... ,, १२
,, (६) काकपद...... + ... ,, १६

इस प्रकार इन छः अंगों से ही दक्षिण के सब ताल बने हैं.

(५) ग्रह :—प्राचीनकाल में ताल के आवर्त में किसी गीत के प्रारंभ के स्थान को ग्रह कहते थे और आज भी कर्नाटक संगीत में यही परिभाषा मानी जा रही है। ग्रह के मुख्य दो भेद होते थे (१) सम ग्रह तब होता था जब गीत, ताल के साथ आरंभ हो अर्थात जब वह १ ली मात्रा से आरंभ हो। (२) विषम ग्रह तब होता था जब गीत, ताल के साथ न आरम्भ हो। विषम ग्रह के दो प्रकार माने जाते थे (१) अतीत, जब गीत का प्रारम्भ ताल से पूर्व हो और (२) अनागत, जब गीत का प्रारंभ ताल के बाद हो।

हिन्दुस्तानी सगीत मे 'जाति' शब्द का भी स्पष्ट अर्थ नहीं रह गया है। साधारणत: सम संख्या की मात्राओं के विभाग वाले ताल चतस्र जाति के ताल माने जाते हैं जैसे तीन ताल, कहरवा, आदि। तिस्र जाति के तालों मे ३, ३ मात्राओं के विभाग होते हैं जैसे दादरा, मिश्र जाति मे धमार, खंड मे झपताल कहे जा सकते हैं, किन्तु वास्तव में हिन्दुस्तान सगीत में केवल दो ही प्रयुक्त होती हैं चतस्र लयकारी और तिस्र लयकारी।

चतस्र जाति की मात्रायें ४ (×), २ (ऽ), १ (—), १/२ (०), १/४ (⌣), १/८ (⌣⌣) और १/१६ (⌣⌣⌣) हैं। और तिस्र जाति की मात्रायें ४/३ (□), २/३ (ע) १/३ (—), १/६ (=) और १/९ (≡) हैं।

(७) कला :—तबला बजाने की विधि और शैली को ही कला कहते हैं। विभिन्न घरानों की कला अपनी एक विशेषता रखती है।

(८) लय :—इसका वर्णन इस प्रकार के प्रारम्भ में और संगीत शास्त्र के प्रथम भाग के द्वितीय अध्याय मे किया जा चुका है।

(९) यति :—लय अथवा गीत नापने की विधि को यति कहते हैं। शास्त्र में इसके भी प्रकार लिखे हैं किन्तु उनका उपयोग हमारे यहां नहीं होता।

(१०) प्रस्तार :—तबला बजाते समय कायदा, पलटा, रेला, टुकड़े, परन आदि बाते हुए जो विस्तार किया जाता है उसी को शास्त्र में प्रस्तार लिखा है।

तबले के दस वर्ण :—तबले पर बजने वाले सभी बोल, मुख्य १० वर्णों की सहायता से निकल सकते हैं, ये मुख्य वर्ण निम्न-लिखित हैं :—

आजकल ग्रह के चार प्रकार सम, विषम, अतीत और
हिन्दुस्तानी संगीत में स्वीकार किये जाते हैं। समग्रह पहली
को और विषम ग्रह खाली को कहते हैं। अतीत और अनागत
प्रयोग अनेक प्रकार के गायक वादक अथवा विशेष कर तबलि
करते हैं। मुख्य सम के बीत जाने पर जोर से धा मारना या स
दिखाना अतीत ग्रह कहलाता है और मुख्य सम के पूर्व ही स
दिखाने को अनागत ग्रह कहते हैं। त्रिताल बजाते समय यदि स
के बाद के "धि" पर जोर दें या वहाँ एक जोरदार धा मारा ज
तो अतीत ग्रह होगा :—(खाली में उदाहरण)

|धा ति तिं ता |ता धिं धिं धा|धा धि धि धा|...
×

यदि सम के "धा" के पूर्व के "धा" पर जोर दिया जाय तो य
अनागत ग्रह होगा :—धा ति तिं ता|ता धि धिं धा|धा धिं धि धा|
×

क्योंकि अनागत का अर्थ है "बाद को आने वाला"—मुख्य सम
बाद को आती है अतः अनागत। अतीत का अर्थ है बीता हुआ–
मुख्य सम बीत जाने पर सम दिखाना अतीत ग्रह हुआ। अतः
हिंदुस्तानी संगीत में अतीत और अनागत, सम का भ्रम उत्पन्न
करने के साधन बन गए हैं।

जाति :—विभागों की मात्राओं संख्या के बदलने से जो तालों
का वजन बदल जाता है उसी से विभिन्न जातियाँ बनी हैं। दक्षिण
पद्धति में लघु (= ।) की मात्रा बदलने से कुल पाँच जातियाँ
बनती हैं :—चतस्र, तिस्र, मिश्र, खंड और संकीर्ण पाँच जातियाँ
हैं जिनमें क्रमशः लघु की मात्राएँ ४, ३, ७, ५ और ६ होती हैं।
इन्हीं ५ जातियों की सहायता से कर्नाटक के ३५ तालों की पद्धति
बनी है।

हिन्दुस्तानी संगीत मे 'जाति' शब्द का भी स्पष्ट अर्थ नहीं रह गया है। साधारणत: सम संख्या की मात्राओं के विभाग वाले ताल चतस्र जाति के ताल माने जाते हैं जैसे तीन ताल, कहरवा आदि। तिस्र जाति के तालों में ३, ३ मात्राओं के विभाग होते हैं जैसे दादरा, मिश्र जाति में धमार, खंड में झपताल कहे जा सकते हैं, किन्तु वास्तव में हिन्दुस्तान संगीत में केवल दो ही प्रयुक्त होती हैं चतस्र लयकारी और तिस्र लयकारी।

चतस्र जाति की मात्रायें ४ (×), २ (S), १ (—), १/२ (०), १/४ (◡), १/८ (◡◡) और १/१६ (◡◡◡) हैं। और तिस्र जाति की मात्रायें ४/३ (□), २/३ (ञ) १/३ (—), १/६ (=) और १/१२ (≡) हैं।

(७) कला :—तबला बजाने की विधि और शैली को ही कला कहते हैं। विभिन्न घरानों की कला अपनी एक विशेषता रखती है।

(८) लय :—इसका वर्णन इस प्रकार के प्रारम्भ में और संगीत शास्त्र के प्रथम भाग के द्वितीय अध्याय में किया जा चुका है।

(९) यति :—लय अथवा गीत नापने की विधि को यति कहते हैं। शास्त्र मे इसके भी प्रकार लिखे हैं किन्तु उनका उपयोग हमारे यहाँ नहीं होता।

(१०) प्रस्तार :—तबला बजाते समय कायदा, पलटा, रेला, टुकड़े, परन आदि वाले हुए जो विस्तार किया जाता है उसी को शास्त्र में प्रस्तार लिखा है।

तबले के दस वर्ण :—तबले पर बजने वाले सभी बोल, मुख्य १० वर्णों की सहायता से निकल सकते हैं, ये मुख्य वर्ण निम्न-लिखित हैं :—

केवल दाहिने तबले पर बजने वाले वर्ण→ (१) ता या ना
(२) ति या तीं
(३) दिं या धुन्
(४) न्
(५) ते
(६) टे या रे

केवल बायें तबले पर बजने वाले वर्ण→ (७) गे या घे
(८) के या क या कन्

दाहिने वा बायें दोनों पर साथ२ बजने वाले वर्ण→(९) धा
(१०) धि

कुछ लोग तबले के मूल वर्ण या अक्षर सात मानते हैं :
दाहिने के (१) ती (२) ना (३) दिन् (४) ति (ते) (५)रि (रे
बायें के (६) घि और (७) कन्।

ये सातों उपर्युक्त १० वर्णों के भीतर भी आगये हैं। तबले इन मूल वर्ण तथा अन्य बोलों को निकालने अथवा बजाने की विधि इस पुस्तक के क्षेत्र के बाहर की वस्तु है।

तबले के पारिभाषिक शब्द

(उदाहरण सब तीन ताल के दिये गये हैं।)

(२) ठेका :—किसी ताल की प्रत्येक मात्रा में, लयकारी के साथ, तबले पर बजने योग्य विभिन्न वर्णों को बांधकर, पूरे एक आवत का जो बोल बनाया गया है, उसे उस ताल का ठेका (अथवा बोल) कहते हैं। जैसे तीन ताल का ठेका है :—

धा धि धि धा	धा धि धि धा	धा ति तिं ता	ता धि धि धा
×	२	०	३

आवृत्ति:-किसी ताल में सम से सम तक के पूरे बोल को आवृत्ति

कहते हैं क्योंकि उसके बाद फिर बार-बार वही बोल या ठेका दोहराया जाता है। यही "आवृत्ति" शब्द आगे चलकर बिगड़ कर 'आवर्तन' अथवा 'आवर्त' बन गया तीन ताल की एक आवर्तन १६ मात्रा की हुई। ४० मात्राओं में झपताल के चार आवर्त हुए।

(३) साथ:—गायन अथवा वादन के साथ तबला बजाने वाला जब उसकी लयकारी के समान बोल-रचना करता हुआ तबला बजाता है अथवा संगत करता है तब उसके इस कार्य को 'साथ करना' कहते हैं। 'साथ' और 'संगत' पर्य्यायी हैं। संगत का चमत्कार तभी प्रशंसनीय होता है जबकि तबलिया गायक अथवा वादक के लय-पेंच आदि के सदृश बोल बजाते हुए भी ताल का ध्यान बनाये रक्खे और साथ ही गायन अथवा वादन का सौंदर्य नष्ट न होने दे वरन् उसे और भी अधिक बढ़ा दे।

(४) 'खाली, खाली सम, विभाग' और 'दुगुन, तिगुन, चौगुन, आड़, कुआड़' आदि शब्दों की व्याख्या क्रमशः संगीत शास्त्र, भाग १ और इस पुस्तक के पृ० ६०—६८ में विस्तार सहित दी जा चुकी है। अतः उसे यहाँ दोहराना अनावश्यक है।

बिआड़ अथवा बिआड़ लयकारी का स्पष्टीकरण यहाँ हो सकता है। इसके दो भी दो मत हैं। (१) एक मत में बिआड़ का तात्पर्य्य कुआड़ की आड़ से। आड़ में १ मात्रा के अंतर्गत $\frac{३}{२}$ मात्रा बोली जाती है। कुआड़ (आड़ की आड़) में १ मात्रा में $\frac{३}{२} \times \frac{३}{२} = \frac{९}{४}$ बोली जाती है। अतः बिआड़ (कुआड़ की आड़) में १ मात्रा में $\frac{९}{४} \times \frac{३}{२} = \frac{२७}{८}$ मात्राए बोली जायँगी अर्थात् ८ मात्रा में २७ मात्रा बोलना बिआड़ का एक अर्थ हुआ। (२) दूसरे मत में बिआड़, पौने दो गुन को कहते हैं, जिसका अर्थ हुआ १ मात्रा में $\frac{७}{४}$ मात्रा अर्थात् ४ में ७ मात्रा बोलना।

(५) क़िस्म :—विभागों और ताल की शक्ल को न बदले हुए उनके ठेके को ही भिन्न भिन्न प्रकार से बजाने को क़िस्म कहते हैं। उदाहरणार्थ तीन ताल में धा धिंधिंधा के स्थान पर धक धिंधिंधा कर देने से तीन ताल की एक क़िस्म बन जाती है। इसी प्रकार तीन ताल की एक क़िस्म नीचे दी जाती है :—

धिं धिं धा धा	धा धा धिं धिं	तिं तिं ता ता	धा धा धिं धिं
×	२	०	३

इसी प्रकार दादरा की क़िस्में दी जाती हैं :—

(अ) |धिं धिं ना|धा तू ना|
|---|---|
|×|०|

(ब) |धाग् धा तिं|ताक् ता तिं|
|---|---|
|×|०|

(६) टुकड़ा :—गायन में तान और सितार में तोड़े की भाँति टुकड़ा, अपने व्यापक अर्थ में, तबले के सभी प्रकार के बोलों के समूहों का नाम है। अर्थात् इस व्यापक अर्थ में मोहरा, मुखड़ा, गत परन आदि सभी एक प्रकार के टुकड़े हैं।

परन्तु विशेष अर्थ में टुकड़ा बोलों का एक वह समूह होता है जो अधिकतर १ से ३ आवर्तन तक का हो जिससे एक विशेष नाम (परन, गत आदि) देना पड़े। टुकड़ों में कोई विशेष बंधन नहीं होता—न ताल की शक्ल का और न लयकारी का। टुकड़ा तीहा सहित भी हो सकता है और रे तीहे का भी। दोनों के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

टुकड़ा तीहा सहित —धा धा तिरकिट धा, तिर किट धा,

ता धा कडान् धा कत्ता | धा, तिर किट, धा तूना कत्ता

धा कत्ता धा कत्ता | धा

टुकड़ा बेतीहे का — | नक ता धिरकिट तक धा |

किट तक धाधा तूना धिडनग तिरकिट तक, ता तिरकिट |

धेना धागे नधा तिरकिट | धा

(७) तीहा —किसी बोल को टुकड़े एक ही ढंग से पूरा पूरा तीन बार बनाकर सम पर आने को तीहा कहते हैं। तीहे दो प्रकार के होते हैं (१) एक बेदम तीहे होते हैं जिनमें बीच की दो समाप्तियों पर रुका नहीं जाता और (२) दूसरे दमदार तीहे होते हैं जिनमें बीच की दोनों समाप्तियों पर थोड़ा रुका जाता है। दोनो के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

बेदम तीहा — | घेघे तेटे धाधा | घेघे तेटे धाधा | घेघे तेटे | धा

दमदार तीहा — | धाधा तिरकिट धाधा तूना | धा ऽ धाधा

तिरकिट | धाधा तूना धा ऽ | धाधा तिरकिट धाधा तूना | धा

(५) किस्म —विभागों और ताल की शक्ल को न बदलते हुए उनके ठेकों को भी भिन्न भिन्न प्रकार से बजाने को किस्म कहते हैं। उदाहरणार्थ तीन ताल में धा धिधिधा के स्थान पर धक धिधिधा कर देने से तीन ताल की एक किस्म बन जाती है। इसी प्रकार तीन ताल की एक किस्म नीचे दी जाती है —

धि धि धा धा	धा धा धि धि	ति ति ता ता	धा धा धि धि
×	२	०	३

इसी प्रकार दादरा की किस्में भी आती हैं .—

(अ) धि धि ना | धा तू ना |
× ०

(ब) धाग धा ति | ताक ता ति |
× ०

(६) टुकड़ा —गायन में तान और सितार में तोड़े की भाँति टुकड़ा, अपने व्यापक अर्थ में, तबले के सभी प्रकार के बोलों के समूह का नाम है। अर्थात् इस व्यापक अर्थ में मोहरा मुखड़ा, गत परन आदि सभी एक प्रकार के टुकड़े हैं।

परन्तु विशेष अर्थ में टुकड़ा बोलों का एक वह समूह होता है जो अधिकतर १ से ३ आवर्तन तक का हो जिससे एक विशेष नाम (परन, गत आदि) देना पड़े। टुकड़ों में कोई विशेष बंधन नहीं होता—न ताल की शक्ल का और न लयकारी का। टुकड़ा ताहा सहित भी हो सकता है और बे ताहे का भी। दोनों के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

टुकड़ा तीहा सहित :—धा धा तिरकिट धा, तिर किट धा|

ती धा धड़ान् धा कत्ता| धा, तिर किट, धा तूना कत्ता
२ | ० ×

|धा कत्ता धा कत्ता| धा
| ३

टुकड़ा बेतीहे का :— | नक ता धिरकिट तक, धा |
| ×

किट तक धाधा तूना| धिडनग तिरकिट तक, ता तिरकिट|
२ | ०

धेना धागे नधा तिरकिट| धा
| ×

(७) तीहा :—किसी बोल को हूबहू एक ही ढंग से पूरा पूरा, तीन बार बजाकर सम पर आने को तीहा कहते हैं। तीहे दो प्रकार के होते हैं (१) एक बेदम तीहे होते हैं जिनमें बीच की दो समाप्तियों पर रुका नहीं जाता और (२) दूसरे दमदार तीहे होते हैं जिनमें बीच की दोनों समाप्तियों पर थोड़ा रुका जाता है। दोनों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

बेदम तीहा :— |घेघे तेटे धाधा |घेघे |तेटे धाधा |घेघे तेटे| धा
| ० | ३ | ×

दमदार तीहा — |धाधा तिरकिट धाधा तूना |धा ऽ धाधा
| × | २

तिरकिट|धाधा तना धा ऽ|धाधा तिरकिट धाधा तूना| धा
| ० | ३ | ×

(८) मुखड़ा :—मुखड़ा वह छोटा बोल है जो अधिकतर गायन अथवा वादन के बिलकुल प्रारम्भ में गायक-वादक के साथ सम दिखाने के लिए प्रयुक्त होता है। जिस प्रकार नाच के पूर्व उठान बजती है इसी प्रकार गायक-वादक के पूर्व मुखड़ा बजता है। अत यह एक प्रकार से एक छोटी उठान होती है परन्तु मुखड़े के बोल उठान की अपेक्षा मुलायम होते हैं। गायन-वादन के मध्य में जो गायक-वादक के साथ मुखड़ा पकड़ने तथा सम पर मिलने के लिए छोटे-छोटे बोल बजाये जाते हैं उन्हें भी बहुत से लोग मुखड़ा कहते हैं किंतु ये वास्तव में मोहरा होते हैं। मुखड़े के बोल मोहरे की अपेक्षा कुछ जोरदार होते हैं मुखड़े अधिकतर १ आवर्त से बड़े नहीं होते, छोटे ही होते हैं। मुखड़े तीहेदार और बेतीहे के भी हो सकते हैं —

मुखड़ा बेतीहे का — धागेतेटे तागेतेटे धागेतेटे तागेतेटे

३

कडधा ऽ ता ऽ न् धा ऽ क्टि धीं ऽ धा ऽ किट् धा

×

मुखड़ा तीहा सहित — तेटे घेटे धागे तेटे कडधातेटे धागे तेटे

०

धागे नन गदिगिन नगतेटे कत कत क ऽ त्ता धे के टे क ऽ

३

त्ता धे केटे धागे तेटे कडधा ऽ न् धा ऽ कडधा ऽ न धा ऽ कडधाऽन्

धा

(९) मोहरा —यह छोटा टुकड़ा है जिसे संगत करते समय गायन-वादन के मध्य में गायक वादक के मुखड़ा पकड़ कर सम पर मिलने के साथ २ बजाकर सम पर मिलते हैं। जहाँ से गायक

गीत का मुखड़ा पकड़े वहाँ से तबलिये को मोहरा बनाकर उसके साथ सम पर आना पड़ता है, तभी उसकी प्रशंसा होती है। मोहरे खूबसूरती के लिए ही गायन-वादन की संगत में प्रयुक्त होते हैं। बहुत से विद्वान् खाली से सम तक के तीहे (अथवा तिहाई के बोलों) को ही मोहरा कहते हैं पर वास्तव में मोहरे तीहे सहित वा तीहे रहित दोनों प्रकार के सुनने में आते हैं। मोहरे १ आवर्त से छोटे ही होते हैं। बड़े ख्यालों में तो ½, ¾, ¼, १. १½, २ आदि छोटी-छोटी मात्राओं के भी मोहरे बजाये जाते हैं।

मोहरा (मुँह से) मुखड़ा (मुख से) दोनों ही गीत अथवा गत के मुखड़े के साथ बजाकर सम पर मिलने का अर्थ रखते हैं किन्तु आजकल तबलियों के संसार में मोहरा और मुखड़ा प्रयोग की दृष्टि से पृथक हो गये हैं।

मोहरा बेतीहे का :—धिरधिर किट तक ता ऽ तिरकिट तक

ता ऽ तिरकिट तक ता ऽ तिरकिट तक | धा
×

मोहरा तीहा सहित :— | ता ऽ तूना किट तक ता ऽ तिर
०

किट तक तिरकिट तकता ऽ तिरकिट | धा, तिरकिट
३

तकता ऽ तिरकिट धा, तिरकिट तकता ऽ तिरकिट | धा
×

(१०) उठान :—यह बड़ा और जोरदार बोल है जो अधिकतर नाच के पूर्व में बजाया है। उठान किसी भी मात्रा वा लयकारी में फेंका जा सकता है। कभी-कभी सोलो तबला में भी प्रारम्भ में उठान बजाई जाती है उठान एक प्रकार से प्रारम्भिक परन है।

(८) मुखड़ा :—मुखड़ा वह छोटा बोल है जो अधिकतर गायन अथवा वादन के बिलकुल प्रारम्भ में गायक-वादक के साथ सम दिखाने के लिए प्रयुक्त होता है। जिस प्रकार नाच के पूर्व उठान बजती है उसी प्रकार गायक-वादक के पूर्व मुखड़ा बजता है। अतः यह एक प्रकार से एक छोटी उठान होती है परन्तु मुखड़े के बोल उठान की अपेक्षा मुलायम होते हैं। गायन-वादन के मध्य में जो गायक-वादक के साथ मुखड़ा पकड़ने तथा सम पर मिलने के लिए छोटे-छोटे बोल बजाये जाते हैं उन्हें भी बहुत से लोग मुखड़ा कहते हैं किंतु वे वास्तव में मोहरा होते हैं। मुखड़े के बोल मोहरे की अपेक्षा कुछ जोरदार होते हैं मुखड़े अधिकतर १ आवर्त से बड़े नहीं होते, छोटे ही होते हैं। मुखड़े तीहैदार और बेतीहे के भी हो सकते हैं :—

मुखड़ा बेतीहे का :— | धागेतेटे तागेतेटे धागेतेटे तागेतेटे

२

कड़धा ऽ ता ऽ न् धा ऽ किट दीं ऽ धा ऽ किट | धा

×

मुखड़ा तीहा सहित :— | धेटे धेटे धागे तेटे कड़धातेटे धागे तेटे

०

धागे नन गदिगिन नगतेटे कत कत | क ऽ त्ता धे के टे क ऽ

३

त्ता धे केटे धागे तेटे कड़धा ऽ न् धा ऽ कड़धा ऽ न धा ऽ कड़धाऽन् |

धा

×

(९) मोहरा :—वह छोटा टुकड़ा है जिसे संगत करते समय गायन-वादन के मध्य में गायक वादक के मुखड़ा पकड़ कर सम पर मिलने के साथ २ बजाकर सम पर मिलते हैं। जहाँ से गायक

धेन् धेन् तागि ऽन्न | धा ऽ धेत् धेत् | तागि ऽ न्न धा ऽ |
× २ ०
धेन् धेन् तागि ऽन्न | धा
३ ×

(१२) गत :—परन, कायदा, पेशकारा आदि से पृथक एक विशेष प्रकार के बोलों के समूह को गत कहते हैं जो अधिकतरपहले ठाह में, फिर दो बार दुगुन मे और चार बार चौगुन में बजाई जाती है और जिसके बोल परन से मुलायम होते हैं। गत तबले की एक मुख्य चीज है। कुछ विद्वानों के अनुसार गत के बीच में सम दिखलाने वाला स्वतन्त्र धा नहीं आता और न गतों में तीहे प्रयुक्त होते हैं। कुछ के अनुसार गतों में चाँटी के बोलों का अधिक प्रयोग होता है। गत सोलो मे बजाई जाती है।

गत :—धी | धिनक तकिट धिनक | धा, तिरकिट धातिट
× २
धिनग दि गिन | नगेन नगेन तकिट धिनक | धा, तिरकिट धातिट
० ३
धिनग दिगिन |

(१३) कायदा :—बोलों के उस समूह को कायदा कहते हैं जो अधिकतर एक आवर्त का और कभी-कभी दो या अधिक आवर्त का होता है और जिसकी रचना ताल के विभागों के अनुसार होती है। कायदे में ताल की शक्ल कायम रहती है और उनमें भरी के स्थान पर भरी और खाली के स्थान पर खाली होती है। सोलो बाज में प्रायः प्रारम्भ कायदों से ही होता है और फिर उसके पलटे, रेले बजाये जाते हैं। जैसे गायन मे थाट और उससे विभिन्न राग

उठान :—धेत् धेन धा ऽ | कत कत कत ऽ |
 × २

धागे तेटे धागे तेटे | कड़धे ऽ घ्र कड़धा तेटे | कड़धा तेटे धागे तेटे
० ३ ×

धा ऽ कड़धा तेटे | धागे तेटे धा ऽ | कड़धा तेटे धागे तेटे | धा
२ ० ३ ×

(११) परन :—उस बड़े और जोरदार टुकड़े को कहते हैं जो कम से कम दो आवर्त का और चाहे जितने अधिक आवर्तों का हो सकता है और जिसमें अधिकतर बोल दोहरावे हुए चलते हैं और य से लड़ते चलते हैं। परनें अधिकतर तोहों से समाप्त की जाती है। परन वास्तव में पखावज की वस्तु है, इसीलिए तबले पर बजाते समय वह जोर दार बोली से ही बनाई जाती है।

परन शब्द भी कभी-कभी व्यापक अर्थ में सभी प्रकार के बोल अथवा टुकड़ों के लिए प्रयुक्त होता है, परन्तु यह प्रयोग ठीक नहीं। व्यापक अर्थ के लिए 'बोल' शब्द सबसे अधिक उपयुक्त है। तबल में दादरा, कहरवा आदि छोड़कर सभी बड़े तालों में परनें बजत हैं।

परन :—| धागे तेटे धागे तेटे | धागे तेटे धागे तेटे |
 × २

कड़धा तेटे धागे तेटे | कड़धा तेटे धागे तेटे | कड़धा तेटे कड़धा तेटे |
० ३ ×

कड़धा तेटे धागे तेटे | धेत् धेत् तिरकिट धेत् | धेटे धेटे कड़धा तेटे |
२ ० ३

धा ता ते टे ऽ | ता ते टे धा | धा ते टे | धा धा तूना |
× | २ | ० | ३

पलटा (१) :—

धा ते टे धा	ते टे घे घे	घे घे ते टे	कि ट त क
×	२	०	३
ता ते टे ता	ते टे के के	घे घे ते टे	कि ट त क
×	२	०	३

पलटा (२) :—

घे घे ते टे	घे घे टे घे	घे घे ते टे	कि ट त क
×	२	०	३
के के ते टे	के ते टे के	घे घे ते टे	कि ट त क
×	२	०	३

(१५) :—किसी कायदे के अनेक पलटों में से किसी एक सुन्दर पलटे को चुनकर, उसे तेज लय में तैयारी से फेंक कर देर तक बजाने से रेला बनता है। रेला चौगुन अथवा अठगुन की लयकारी में फेंका जाता है। ठाह की लय के अनुसार जितनी अधिक से अधिक द्रुत लय में तबलिया रेला बजा सके, वह बजा सकता है। रेले के भीतर एक ही बोल-समूह बार-बार बजाये जाते हैं, बोल बदले नहीं जाते। सोलो बजाते समय कायदे के बाद उसके पलटे और फिर रेला फेंका जाता है। किन्तु यह अनिवार्य नहीं है। कभी-कभी स्वतन्त्र रूप से भी रेल फेंका जाता है। सितार के भाले की संगत में रेला फेंका जा सकता है।

रेला :— | धाऽतिरिकिटधाऽ तिरिकिटधाऽऽऽ धाऽतिरकिटधाऽ

बनते हैं उसी प्रकार तबले में कायदा और उसमें पलटे बनते हैं। नीचे एक कायदा एक आवर्त का और एक कायदा दो आवर्त का दिया जाता है :—

कायदा (१) :— |धा धा ते टे |धा धा तू ना|ता ता ते टे|
× २ ०

धा धा तू ना|
३

कायदा (२) :— |धा गे ते टे|घे घे ते टे |घे घे ते टे|
× २ ०

कि ट त क|ता गे ते टे|कि के ते टे|घे घे ते टे|
३ × २ ०

कि ट त क|
३

(१४) पलटा :—ताल के रूप को कायम रखते हुए कायदे में आये बोलों को ही विभिन्न प्रकार से पलटने को पलटा कहते हैं। पलटों मे भरी पर भरी के बोल और खाली पर खाली के बोल आयें, यह आवश्यक नहीं। सोलो बाज में कायदों के पलटे बजाना अत्यन्त मनोरम प्रतीत होता है। ऊपर लिखे दोनों कायदों के दो, दो पलटे नीचे दिये जाते हैं :—

पलटा (१) .—

|धा धा ते टे|ते टे ते टे|धा धा ते टे |धा धा तू ना|
× २ ० ३

ता ता ते टे|ते टे ते टे|धा धा ते टे|धा धा तूना|
× २ ३ ३

पलटा (२) :—

धा धा ते टे|ऽ धा ते टे |धा धा ते टे|धा धा तू ना|
× २ ० ३

ता ता ते टेऽ ता ते टे धा धा ते टे |धा धा तूना |
× |२ |० |३

पलटा (१) :—

|धा ते टे धा |ते टे घे घे|घे घे ते टे|कि ट त क|
|× |२ |० |३

|ता ते टे ता |ते टे के के|घे घे ते टे |कि ट त क|
|× |२ |२ |३

पलटा (२) :—

|घे घे ते टे|घे घे टे घे|घे घे ते टे|कि ट त क|
|× |२ |० |३

|के के ते टे|के ते टे के|घे घे ते टे |कि ट त क|
|× |२ |० |३

(१५) :—किसी कायदे के अनेक पलटों में से किसी एक सुन्दर पलटे को चुनकर, उसे तेज लय में तैयारी से फेंक कर देर तक बजाने से रेला बनता है। रेला चौगुन अथवा अठगुन की लयकारी में फेंका जाता है। ठाह की लय के अनुसार जितनी अधिक से अधिक द्रुत लय में तबलिया रेला बजा सके, वह बजा सकता है। रेले के भीतर एक ही बोल-समूह बार-बार बजाये जाते हैं, बोल बदले नहीं जाते। सोलो बजाते समय कायदे के बाद उसके पलटे और फिर रेला फेंका जाता है। किन्तु यह अनिवार्य नहीं है। कभी-कभी स्वतन्त्र रूप से भी रेल फेंका जाता है। सितार के भाले की संगत में रेला फेंका जा सकता है।

रेला :—|धाऽतिरकिटधाऽ तिरकिटधाऽऽऽ धाऽतिरकिटधाऽ

तिरकिट धाऽऽऽ ताऽतिरकिटताऽ तिरकिटताऽऽऽ
२
धाऽतिरकिटधाऽ तिरकिटधाऽऽऽ धाऽतिरकिट धा ऽ
०
तिरकिटधाऽऽऽ धाऽतिरकिटधाऽ तिरकिटधाऽऽऽ

ताऽतिरकिटताऽ तिरकिट ता ऽऽऽ धाऽतिरकिटधाऽ
३
तिरकिट धाऽऽऽ

(१६) लग्गी .—लग्गी छोटे तालों में बजने वाला वह बोल होता है जिसमें अधिकतर कहरवा छन्द के बोल होते हैं और उसमें डगमगाती चाल से बजाने वाले की तबियतदारी स्पष्ट होती है। यह वास्तव में कहरवा और दादरा तालों की मुख्य वस्तु हैं। जिस प्रकार तीनताल में कायदा होता है, उसी प्रकार कहरवा आदि में लग्गी मानी जा सकती है। तीनताल में भी लग्गी बजती है। भजनों या विशेषकर ठुमरी की बढ़त में लग्गी बहुत प्रिय लगती है।

(कहरवे में) :—

लग्गी (१)

धा, तिर किटतक धाति ऽत्र	धा, तिर किटतक धाति ऽत्र
×	०

ता, तिर किटतक धाति ऽन्न	धा, तिर किटतक धाति ऽन्न
×	०

लग्गी (२)

धागे नाघी ऽक् , धी ना ड़ा	तागे ना ती ऽक् , ती ना ड़ा
×	०

(१७) बाट :—कहरवे छन्द के पलटों को बाट कहते हैं। जिस प्रकार तीनताल में कायदे के बाद पलटे होते हैं, उसी प्रकार कहरवा में लग्गी १ के बाद बाट होते हैं। लग्गी के ही बोलों को पलट कर बाट बनते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि सदैव लग्गी बजाई ही जाय—कभी-कभी स्वतन्त्र के बाट बजाये जाते हैं। ऊपर दी हुई प्रथम लग्गी के बाट नीचे दिए जाते हैं :—

बाट (१) :—

धाति ऽन्न धा, तिर किट तक	धाति ऽन्न धा, तिर किट तक
×	०
ता ति ऽन्न धा, तिर किट तक	धाति ऽन्न धा, तिर किटतक
×	०

बाट (२) :—

धाति ऽन्न धाति ऽन्न	धाति ऽन्न धा, तिर किटतक
×	०
ताति ऽन्न ताति ऽन्न	धाति ऽन्न धा, तिर किटतक
×	०

(१८) लड़ी :—लग्गी के पलटों में से किसी एक के बोलों की तैयारी में कुछ देर तक बजाने की लड़ी कहते हैं। जिस प्रकार कायदे, पलटों के बाद रेला फेंका जाता है, उसी प्रकार कहरे आदि में लग्गी, बाट के बाद लड़ी फेंकी जाती है। स्वतन्त्र रूप में भी लड़ी बजाई जा सकती है। सितार के झालों के साथ भी लड़ी बजती है। लड़ी अधिकतर चौगुन में बजती है। उदाहरण :—

लड़ी : | धातिऽन्न धाऽतिरकिटतक तातिऽन्न धाऽतिरकिटतक
×
| धातिऽन्न धाऽतिरकिटतक तातिऽन्न धाऽतिरकिटतक |
०

(१९) चक्करदार टुकड़ा —तीहेदार वह बोल जो पूर्ण रूप से तीन बार बज कर सम पर आवे, उसे चक्करदार टुकड़ा कहते हैं। तीहे के सभी 'धा' तीनों बार बजने चाहिये। केवल तीसरी बार अंतिम "धा" सम का 'धा" होगा। चक्कर टुकड़े अनेक प्रकार के हो सकते हैं।

चक्करदार टुकड़ा

|धा क्ड़ धा, ऽ न, धा   द ड़, ऽ न्न, ता धा
×
धाऽतिर, किटतक, धा ऽ   धाऽतिर, किटतक, ता ऽ |
कत् धाऽतिर, किटतक, ता   धा, ऽ, धाऽतिर, किटतक
२
ता, ऽ, कत , धाऽतिर   किटतक, ता, धा ऽ |

धाऽधा,किटतिकतऽ क्न्, धा ऽतिर,किटतक,ता |
धाऽ,ऽ,ऽ यह पूरा बोल तीन बार बजेगा किन्तु तीसरी बार

अंतिम "धा" सम पर ही आयेगा। (नोट :—ऊपर एक मात्रा के कोष्ठक तीन कोमे लगे हैं जो पूरी एक मात्रा को चार बराबर भागों में बाँटते हैं, अर्थात प्रत्येक भाग चौथाई मात्रा का है।)

पेशकार :—पेशकारा एक प्रकार का कठिन और अधिक सुन्दर कायदा होता है। इसके भी पाट-पलटे बजाये जाते हैं। सोलो मे ही प्रारम्भ मे पेशकारा बजता जाता है। पेशकारे के बोलों में भी कायदे की भाँति ताल की शक्ल अथवा उसका वजन (विभागानुसार) नहीं बिगड़ता परन्तु उसकी बन्दिश कुछ कठिन होती है और कदाचित इसी लिए उसे अधिक द्रुत मे फेंकना होने से उसी के बोलों का रेला प्राय नहीं बजाया जाता। कुछ विद्वानों के अनुसार पेशकारे में ताल के अंतिम विभागों में बोलों की चाल बदल भी जाती है अर्थात् उनके अनुसार पूर्व के विभाग और अंत के विभाग एक से हों यह आवश्यक नहीं। पेशकारे की चाल अत्यन्त सुन्दर और डगमगाती हुई होती है और कुछ विद्वानों के मत में पेशकारे अधिकतर धीऽक्ड धिक्ता आदि बोलों की चाल से बनते हैं। पेशकारा दिल्ली की और सोलो बाज के प्रारम्भ में पेश किया जाता है। पेशकारे के निम्नलिखित दो उदाहरणों से उसका भाव कुछ स्पष्ट हो जायगा .—

पेशकारा (१)

धी,ऽक धिन्ना ऽक ता धी,ऽक धिन्ना ऽक ता धिन्ना ऽक,ता |
२

(१८) लड़ी :—लग्गी के पलटों में से किसी एक के बोलों को तैयारी में कुछ देर तक बजाने को लड़ी कहते हैं। जिस प्रकार कायदे, पलटों के बाद रेला फेंका जाता है, उसी प्रकार कहरवे आदि में लग्गी, बाट के बाद लड़ी फेंकी जाती है। स्वतन्त्र रूप से भी लड़ी बजाई जा सकती है। सितार के झालों के साथ भी लड़ी बजती है। लड़ी अधिकतर चौगुन में बजती है। उदाहरण :—

लड़ी : | धातिऽन्न धाऽतिरकिटतक तातिऽन्न धाऽतिरकिटतक |
×
| धातिऽन्न धाऽतिरकिटतक तातिऽन्न धाऽतिरकिटतक |
०

(१६) चक्करदार टुकड़ा :—तीहेदार वह बोल जो पूर्ण रूप में तीन बार बज कर सम पर आये, उसे चक्करदार टुकड़ा कहते हैं। तीहे के सभी 'धा' तीनों बार बजने चाहिये। केवल तीसरी बार अंतिम "ध" सम का "धा" होगा। चक्कर टुकड़े अनेक प्रकार के हो सकते हैं।

चक्करदार टुकड़ा

| धा कड़ धा, ऽ न, धा द ड़, ऽ न्न, ता धा
×
धाऽतिर, किटतक, धा ऽ धाऽतिर, किटतक, ता ऽ |
कत् धाऽतिर, किटतक, ता धा, ऽ, धाऽतिर, किटतक
२
ता, ऽ, कत् , धाऽतिर किटतक, ता, धा ऽ |

धाऽत्तर,क्टितिक तऽ कन्, धा ऽतिर,किटतक,ता।

धाऽ,ऽ,ऽ यह पूरा बोल तीन बार बजेगा किन्तु तीसरी बार

x

अंतिम "धा" सम पर ही आयेगा। (नोट :—ऊपर एक मात्रा के कोष्ठक तीन कौमे लगे हैं जो पूरी एक मात्रा को चार बराबर २ भागों में बाँटते हैं, अर्थात् प्रत्येक भाग चौथाई मात्रा का है।)

पेशकार :—पेशकारा एक प्रकार का कठिन और अधिक सुन्दर कायदा होता है। इसके भी बाट-पलटे बजाये जाते हैं। सोलो मे ही प्रारम्भ मे पेशकारा बरता जाता है। पेशकारे के बोलों में भी कायदे की भाँति ताल की शक्ल अथवा उसका वजन (विभागानुसार) नहीं बिगड़ता परन्तु उसकी बन्दिश कुछ कठिन होती है और कदाचित इसी लिए उसे अधिक द्रुत में फेंकना होने से उसी के बोलों का रेला प्रायः नहीं बजाया जाता। कुछ विद्वानों के अनुसार पेशकारे मे ताल के अंतिम विभागों में बोलों की चाल बदल भी जाती है अर्थात् उनके अनुसार पूर्व के विभाग और अंत के विभाग एक से हों, यह आवश्यक नहीं। पेशकारे की चाल अत्यन्त सुन्दर और डगमगाती हुई होती है और कुछ विद्वानों के मत मे पेशकारे अधिकतर धीऽक्ड़ धिंक्ता आदि बोलों की चाल से बनते हैं। पेशकारा दिल्ली की ओर सोलो बाज के प्रारम्भ में पेश किया जाता है। पेशकारे के निम्नलिखित दो उदाहरणों से उसका भाव कुछ स्पष्ट हो जायगा :—

पेशकारा (१)

धी,ऽक धिन्ना ऽक ता धी,ऽक | धिन्ना ऽक ता धिन्ना ऽक,ता |

x | २

ती,ऽक तिन्ना ऽक ता ती,ऽक धिन्ना ऽक,ता धिन्ना ऽक,ता
|० ३

धीऽऽक्ड़, धिन्ताऽ ऽगताऽ,धीऽऽक्ड़ धिन्ताऽ,ऽगताऽ

×
धऽऽक्ड़धिन्ताऽ धीऽऽक्ड़,धिन्ताऽ ऽगताऽ,धीऽऽक्ड़
|२

धिन्ताऽ,धीऽऽक्ड़ धिन्ताऽऽगताऽ | तीऽऽक्ड़,तिन्ताऽ

ऽगताऽ,तीऽऽक्ड़ तिन्ताऽ ऽगताऽ तीऽऽक्ड़,तिन्ताऽ

धीऽऽक्ड़,धिन्ताऽ ऽगता, धीऽऽक्ड़ धिन्ताऽ, धीऽऽक्ड़

३
धिन्ताऽ,ऽगताऽ |

कुछ कठिन तालों के ठेके

(सरल तालों के ठेके और टप्पा, ठुमरी के ठेके भी संगीतशास्त्र भाग १ में दिये जा चुके हैं। कुछ कठिन ताल इस पुस्तक में ही पृष्ठ ४८-५० मे दिये गये हैं, जैसे झूमरा, आड़ाचार ताल, गजझंप, मत्त, शिखर, रूपक-विलंबित, सूलफाक—विलंबित और १५ मात्रा की सवारी।)

टप्पा का अन्य ठेका (१६) मात्रा

|क्ड़धि ऽ धा ऽगधा धि ता ऽ|
|× |२

कड़ति ऽ ता ऽक	धा धिं धाऽ
०	३

अथवा

धिं ऽ धा ऽग	धा धिं ता ऽक्ड़
×	२

तिं ऽ वा ऽक	धा धिं धा ऽक्ड़
०	३

अद्धा (१६) मात्रा

धा गिं ऽ धा	धा धिं ऽ धा	धा तिं ऽ ता	ता धिं ऽ धा
×	२	०	३

फ़रोदस्त ताल (१४) मात्रा

मत (१) :—

धिं धिं	धागे तिरकिट	तू ना	क त्ता
×	०	२	०

धिन कधा	तिरकिट धिन	कधा तिरकिट
३	४	५

मत (२) :—

धिन धाधा	धिन धाधा	धिंन तागे	तिर किट तिन
×	२	३	४

ताता तिन	ताता तिन	धागे तिरकिट
०	५	०

मत [३]

|तागे तिरकिट |तागे तिरकिट तित,ता तिरकिट |धि ना|
|× |२ ३ |४ |

|धिं धिं|ता धेधे|तागे तिन्|
|० |५ |० |

ब्रह्म ताल (२८ मात्रा)

मत (१)

|धिं ऽधी ना|कि ट |त क |धी ना|क धा|
|× |० |२ |३ |० |४ |

|तिर किट |तिं ऽ |ती ना|कि ट |त क |धी ना|
|५ |६ |० |७ |८ |९ |

|क धा|तिर किट|
|१० |० |

मत (२)

धा तिट|धि ना|ता तिट|तिं ना |तिट तिट|ति ता|
× |० |२ |३ |० |४ |

|किट तक|ता धी|धी ना|तिट गदि|गन तिट|ता धी|
|५ |६ |० |० |८ |९ |

ना धी|धी ना|
१० |० |

मत (३) (१४ मात्रा द्रुत या मध्य के लिए)

धा	तन्	धे:	धिन	नक	धे:	धे:	धिन	नक
x	०	२	३	०	४	५	६	०

धागि	तिट	कत	गदि	गन
७	८	९	१०	०

(नोटः—इसी १४ मात्रा के बोल को २८ मात्राओं का भी बनाया जा सकता है।

पश्तो ताल (७) मात्रा

मत (१)

त ऽ नक	धि ऽ	ध गे
	२	३

मत (२)

त क धि	धा धा	ति ऽ
१	२	०

मत (३)

त क धि धा धा धा धिं
१   २   ३

सवारी ताल (१६ मात्रा)

मत (१)

धि धि	धा तिट	ना किट	नाग तून	क्ता धीना
×	०	२	०	३

धीरी नाधी	नागे तिरकिट	तूना कत्ता
२	२	०

मत २ (३२ मात्रा)

धी ऽ ना ऽ	धी ऽ धी ऽना ऽ धी धा	ना धी धी ना
×	२ ३	४

तिं तिर किट तिं	तिं ना तिं ना	किट ता धी धी
२	५	६

ना धी धी ना
७

सरस्वती ताल (१८ मात्रा)

धा ऽ जि न्ना धे नके टे धे न	धा गे ते टे
× २ ३	४

धा गे तुन्न
५

रुद्र ताल (११ मात्रा)

मत (१)

धी	ना	धी	ना	ती	ती	ना	क	त्ता	धी	ना
×	२	०	३	४	५	०	६	७	८	०

मत (२)

धा	दि	ता	कृद्	धा	धा	दि	ता	त्त	धा	धुन्
×	०	२	३	४	०	५	६	७	८	०

झुम्प ताल ११ मात्रा

धा	धि	तिट	रत	धा	धि	नक	निट	क्त	गदि	गन
×	०	२	३	०	४	०	५	६	७	०

लक्ष्मी ताल (१८ मात्रा)

धिं	तेत	धेत	धेत	दि	ता	तिट	कत	धा	दि
×	२	३	०	४	५	६	०	७	८

ता	धुम	किट	धुमं	तिट	कत	गदि	गन
६	१०	११	१२	१३	१४	१५	०

छोटी सवारी (१५ मात्रा)

मत (१) (१५ मात्रा)

धीना धीधी | क्त धीधी नाधी धीना | ती,ऽक्ड़ तूना
× | ० | ०

तिरकिट तूना | कत्ता धीधी | नाधी धीना |
| ३ | |

मत (२) (१५ मात्रा)

धिं ऽ ऽ ना ऽ क्ड़ धिऽ ऽ ना कड़ | धिं नत धिना तीना |
× | २

ति तीना तिरकिट, तूना कड़नग | कत्ता धीधी नाधी धीना |
० | ३

मत (३) (३० मात्रा)

धी ऽ ना ऽ | धी ऽ धी | ऽना ऽ थी धी | ना धी धी ना
× | २ | ३ | ४

ती ऽतिर किट | तीना तित त्ता | धिं धिं ना | धिं धिं ना |
० | ५ | ६ | ७

मत (४) (३० मात्रा-ग्रमवारी)

| धी ता के धीना के धीं धीन क धी धीत क तो ना |
| × | २ | ३ | ४ |

| ती ना तिर किट धीना धीधी नाधीं धीना धीना |
| ० | ५ | ३ | ७ |

सेमता (१२ मात्रा)

| धा टे धी ना ती ने ता टे धीं ना ती ने |
| × | २ | ० | ३ |

नोट :—जिन तालों के अनेक मत के ठेके ऊपर (दिए गए हैं, विद्यार्थी उनमें से किसी एक को याद कर सकते हैं।)

परिशिष्ट

१

कर्नाटक ताल पद्धति

दक्षिण भारतीय अथवा कर्नाटक संगीत पद्धति में आजकल ३५ तालों की पद्धति चल रही है जिनमें षट-अंगों में से तीन अंग अणुद्रुत,द्रुत और लघु प्रयुक्त होते हैं। अणुद्रुत का चिह्न ◡ है और मात्रा एक है। द्रुत का चिह्न ० है और मात्राएँ दो हैं। लघु का चिह्न । है और मात्राएँ चार हैं। शेष तीन अंग गुरु (=मात्रा ८), प्लुत (मात्रा १२) और काकपद (मात्रा १३) पुरानी १०८ तालों की पद्धति में प्रयुक्त होते थे।

आधुनिक कर्नाटक ताल पद्धति में मुख्य ताल तो सात हैं :— ध्रुव, मठ, रूपक, झप त्रिपुट, अठ और एक, किंतु प्रत्येक की पांच जातियां होती हैं :—चतस्त्र, तिस्त्र, मिस्त्र, खंड और सकीर्ण, अतः कुल ताल ७ × ५ = ३५ होते हैं। विभिन्न जातियाँ लघु (।) की मात्रा बदलने से बनती हैं :—

(१) चतस्त्र जाति में लघु की मात्रा = ४
(२) तिस्त्र ,, ,, = ३
(३) मिस्त्र ,, ,, = ७
(४) खंड ,, ,, = ५
(५) सकीर्ण ,, ,, = ६

लघु, द्रुत आदि चिह्नों की सहायता से सातों ताल इस प्रकार लिखे जाते हैं। (प्रत्येक चिह्न एक पृथक विभाग, सूचित करता है जिसकी मात्रायें उसी चिह्न द्वारा पता चलती हैं) :—

(१) ध्रुव ताल———।०।। अर्थात् ४, २, ४, ४
(२) मठ ,, ———।०। ———४, २, ४
(३) रूपक ,, ——— ०।———२, ४
(४) झप ,———।◡०———४, १, २
(५) त्रिपुट,, ———।००———४ २, २,
(६) अठ ,, ———।००———४, ४, २, २
(७) एक , । ——— ४

प्रत्येक विभाग की प्रारम्भिक मात्रा पर ताली मानी जाती है। दक्षिण भारत में खाली के स्थान पर विसर्जितम् शब्द प्रयुक्त होता है पर उसका भाव कुछ भिन्न होता है। विसर्जितम् वास्तव में किसी विभाग के मध्य की मात्राओं को गिनने अथवा दिखलाने का साधन है जिसमें हाथ कभी ऊपर उठाया जाता है (पताक विसर्जितम्) कभी बाईं ओर हिलाया जाता है (कृपय विसर्जितम्) और कभी दाहिनी ओर हिलाया जाता है। (सर्पिणि विसर्जितम्)। ध्रुव ताल को हिंदुस्तानी ढंग से इस प्रकार लिखेंगे —

|१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ |
|+ २ |३ |४ |

इसी प्रकार त्रिपुट ताल इस प्रकार लिखी जायगी —

| १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ |
| × २ ३ |

ऊपर के सातों तालों में लघु की मात्रायें ३, ७, ५, ९ कर देने क्रमश: उनकी तिस्र, मिश्र, खंड और सकीर्ण जातियाँ बन जाती हैं। ऊपर लिखे ताल सभी चतस्र जाति के हैं क्योंकि लघु की ४ मात्रायें मानी गई हैं। तिस्र जाति के विभाग ३ २, ३, ३ होंगे, मिश्र ध्रुव के ७, २, ७, ७, खंड ध्रुव के ५, २, ५, ५ और सकीर्ण

के ६, २, ६, ६। इसी प्रकार खंड जाति के झंप ताल के ५, १, २ होंगे। चतस्त्र जाति के त्रिपुट ताल को आदि ताल कहते हैं, जो दक्षिण में प्रयुक्त होता है।

इस प्रकार कुल ३५ तालों की पद्धति दक्षिण में प्रचलित है। ... को भी दक्षिण ताल चिह्नों द्वारा लिख सकते हैं, जैसे यदि प्रत्येक विभाग पृथक लिखाकर लिखें तो झपताल को ऐसे लिखेंगे ० ।₃ ० ।₃ जिसमें लघु त्तिस्त्र जाति का बना दिया है। यदि केवल तालियों का ध्यान रखकर लिखा जाय तो २, ३, २, ३, नहीं वरन् २, ५, ३ बन जायँगे और तब झपताल को इस प्रकार लिखेंगे :— ०।० (चतस्त्र जाति में) या ०। । (तिस्त्र जाति में)। धमार को विभागानुसार तो इस प्रकार लिखेंगे :— ।० ०। (५, २, ३, ४) परन्तु तालियों के अनुसार इस प्रकार लिखेंगे :— । ।। जब जाति के बारे में कुछ कहा न जाय, तब चतस्त्र जा समझी जाती है।

कर्नाटक अटताल (४, ४, २, २) हिन्दुस्तानी चार अथवा एक ताल के समान है और कर्नाटक तिस्त्र जाति का त्रिपुट ताल (३, २, २) हिन्दुस्तानी तीवरा ताल के समान है इत्यादि।

(२)

कर्नाटक और हिंदुस्तानी मूल राग

कर्नाटक और हिन्दुस्तानी राग-नामों में तो कुछ समानता मिलती है परन्तु उनके स्वर स्वरूपों में पर्याप्त अन्तर आ गया है। हिन्दुस्तानी मुख्य दस रागों से समता रखने वाले कर्नाटक रागों के नाम नीचे दिये जाते हैं :—

हिन्दुस्तानी राग	कर्नाटक राग
(१) बिलावल	(१) धीर शकराभरण
(२) कल्याण (यमन)	(२) मेच कल्याणी
(३) खमाज	(३) हरि कांभोजी
(४) काफी	(४) खरहर प्रिया
(५) भैरव	(५) मायामाल वगौड़
(६) भैरवी	(६ हनुमत तोड़ी
(७) आसावरी	(७) नट भैरवी
(८) पूर्वी	(८) काम वर्धनी
(९) मारवा	(९) गमन प्रिया
(१०) तोड़ी	(१०) शुभ पतुवराली

कुछ अन्य रागों का मिलान भी नीचे दिया जाता है :—

हिन्दुस्तानी	कर्नाटक
(१) दुर्गा	शुद्ध सावेरी
(२) भूपाली	मोहन
(३) जोगिया	सावेरी

(३)

राग-रागिनी पद्धति

उत्तर हिन्दुस्तानी सङ्गीत में रागों के वर्गीकरण की मुख्य तं
प्रणालियाँ पाई जाती हैं :—(१) मेल अथवा थाट पद्धति जिस
अनुसार सभी रागों को १० थाटों में विभाजित किया गया '-
बिलावल, कल्याण, खमाज, भैरव, भैरवी, आसावरी, काफी, पू
मारवा और तोड़ी, (२) दूसरी पद्धति रागांग पद्धति है जिसमें मुर
३० रागांगों के अन्तर्गत सभी रागों को बांटा गया है.– भैर

...रवी, भैरवी, सारङ्ग, भीमपलासी, ललित, पीलू, विभास, नट ... वागेश्री, केदार, शङ्करा, कानड़ा, मल्हार, हिंडोल, भूपाली, ..., बिहाग, कामोद, भटियार और दुर्गा। (३) तीसरी, राग-रागिनी पद्धति है जिसमें मुख्य राग छः माने गये हैं और प्रत्येक राग की छः छः अथवा पाँच-पाँच रागिनियाँ और प्रत्येक के आठ-आठ पुत्र आदि माने गये हैं।

प्रथम, थाट पद्धति में स्वर-साम्य का अधिक ध्यान रक्खा गया है, स्वरूप-साम्य का ध्यान अपेक्षाकृत कम। द्वितीय रागांग पद्धति में स्वरूप-साम्य का ध्यान अधिक और स्वर-साम्य का ध्यान कम रक्खा गया है। रागांग पद्धति में वर्गों की संख्या बहुत अधिक है जिससे वर्गीकरण का महत्व और लाभ कम हो जाता है। तृतीय राग-रागिनी पद्धति में स्वर-साम्य का कितने अंश में समन्वय था, यह आज कहना कठिन है।

राग रागिनी वर्गीकरण के मुख्य चार मतों का उल्लेख मिलता है, जिनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है :—

(१) शिव अथवा सोमेश्वर मत :—इस मत के अनुसार छः राग श्री, वसंत, पंचम, भैरव, मेघ और नटनारायण हैं और प्रत्येक की छः रागिनियाँ और आठ पुत्र हैं।

(२) कल्लिनाथ मत :—इस मत के अनुसार भी शिव का ही छः राग श्री, वसंत पंचम, भैरव मेघ और नटनारायण हैं। रागिनियाँ भी प्रत्येक की छः हैं किन्तु वे शिव से भिन्न हैं। प्रत्येक के आठ पुत्र भी शिव से भिन्न हैं।

(३) भरत मत :—इस मत में छः राग दूसरे हैं :—भैरव, मालकंस हिंडोल, दीपक श्री और मेघ। प्रत्येक की पाँच रागिनियाँ और आठ पुत्र तथा आठ भार्या भी हैं (पुत्रवधू)।

(४) हनुमत मत:—हनुमत मत भरत मत के समान है, छः राग

यही है —भैरव, मालकम, हिंडोल दीपक, श्री और मेघ। प्रत्येक की पाँच रागिनियां और आठ पुत्र भरत से भिन्न हैं और भार्या नहीं हैं।

जिस समय ये मत बने थे उस समय रागों का जो स्वरूप था, वह आज नहीं है अत उन मतों को आधुनिक रागों में लागू नहीं कराया जा सकता। यही विचार करके पटना के मुहम्मदरजा ने १८१३ ई० में अपने ग्रन्थ नगमाते आसफी में लिखा है कि राग रागिनी पद्धतियाँ जो उस समय प्रचलित थीं, सब गलत हैं। रजा साहब ने मिलते-जुलते रागों को फिर से एकत्रित करके एक नई राग-रागिनी पद्धति का निर्माण किया।

निम्नलिखित उदाहरणों से भलीभांति ज्ञात हो जायगा कि हनुमत मत की राग-रागिनयां और पुत्र आजकल के स्वरूप के अनुसार एक परिवार में नहीं रक्खे जा सकते —

(१) भैरव राग —रागिनिया→भैरवी सिन्धवी आदि।
पुत्र→पूरिया पचम आदि।
(२) मालकोश —रागिनियाँ→तोडी, खभावती आदि।
पुत्र→—बड़हस, मारु आदि।
(३) हिंडोल —रागिनियाँ→रामकली, देवसाख।
पुत्र→विभास गौरी।
(४) दीपक —रागिनियाँ→कान्हाडा, देशकार, केदार।
(५) श्री राग —रागिनियाँ→बसत, धनाश्री, आसावरी,
पुत्र→शकरा, बिहागडा।
(६) मेघ राग —रागिनियाँ→गुजरी, मलार, भूपाली।
पुत्र→सारग, कल्याण।

अत अभी तक जितने रागों के वर्गीकरण के ढग निकले हैं

थाट पद्धति ही सर्वोत्तम है यद्यपि उसमें सुधार व संशोधन आवश्यकता है।

(४)

स्वरलिपियों का स्पष्टीकरण

विष्णुदिगंबर पद्धति

स्वर्गीय पंडित विष्णुदिगम्बर पलुस्कर ने प्रारम्भ में स्वरलिपि की जो पद्धति निर्मित की थी, उसका स्वरूप आज परिवर्तित हो गया है, यद्यपि उसकी मुख्य विशेषता आज भी सुरक्षित है। इस पद्धति की मुख्य विशेषता है प्रत्येक मात्रा, मात्रांश अथवा समूहों के लिए पृथक स्वतन्त्र चिन्ह का होना, जैसे :—

(१) चार मात्रा का चिह्न ×
(२) दो मात्रा ,, ,, ऽ
(३) एक मात्रा —
(४) आधी मात्रा ०
(५) चौथाई मात्रा ⌣
(६) १/८ मात्रा
(७) १/१६ मात्रा
(८) ४/३ मात्रा
(९) २/३ मात्रा
(१०) १/३ मात्रा ~ या १/३
(११) १/५ मात्रा ~ या १/५
(१२) १/६ मात्रा ≈ या १/६
(१३) १/२८ मात्रा ≈ १/२८

यदि किसी स्वर के आगे विन्दु लगाया जाता है, तो उसकी

यही हैं :—भैरव, मालकंस, हिंडोल, दीपक, श्री और मेघ। प्रत
की पाँच रागिनियाँ और आठ पुत्र भरत से भिन्न हैं और मा
नहीं हैं।

जिस समय ये मत बने थे उस समय रागों का जो स्वरूप
वह आज नहीं है अतः उन मतों को आधुनिक रागों में लाग
कराया जा सकता। यही विचार करके पटना
१८१३ ई० में अपने ग्रन्थ नगमाते आसफी

मे तीनों सप्तकों के लिए तीन खाने बनाए जाते थे जैसे :—

तार।
मध्य।
मंद्र।

तार के खाने में तार सप्तक के स्वर, मध्य के खाने में मध्य सप्तक के स्वर और मंद्र के स्वर लिखे जाते थे और गीत के शब्द नीचे लिखे जाते थे। इस विधि मे स्थान बहुत लगता था। आज-इसे सरल बना दिया। एक ही पंक्ति में सब स्वर लिखे जाते हैं और तार स्वरों के ऊपर तार सप्तक का चिह्न खड़ी पाई, जोड़ दिया जाता है और मंद्र सप्तक के स्वरों के ऊपर बिन्दु लगा दिया जाता है। मध्य स्वरों मे कोई चिह्न नहीं लगता जैसे षड्ज = सा, मंद्र षड्ज = सां और मध्य षड्ज = सा।

शुद्ध, कोमल और तीव्र स्वरों के चिह्न भी पहले बहुत कठिन थे :—शुद्ध स्वर = ॰ म. कोमल = ॰ म और तीव्र ^। आजकल शुद्ध का कोई चिह्न नहीं मानते। कोमल स्वर नीचे हलंत लगा देते हैं जैसे ग्। तीव्र स्वर के नीचे उलटा हलत है जैसे म परन्तु कभी कभी छपाई की सुविधा के लिए तीव्र म पर भी हलत ही लगा देते हैं (म्) अर्थात विकृत का चिह्न ही हलत बन जाता है—

कण स्वर का चिह्न अभी हाल मे ही इस पद्धतिय में अन्य

ध

पद्धतियों से लिया गया है प में पंचम को धैवत का कण अथवा स्पर्श दिया गया है। मीड के लिए ऊपर गोलाई लिए हुए रेखा खींची जाती है—प ग।

सम का चिह्न १. खाली का चिन्ह + और विभिन्न तालियो के स्थानों पर उनकी मात्राओं की संख्या लिख दी जाती है जैसे

मात्रा डेढ़गुनी हो जाती प॰ में प के नीचे एक मात्रा थी परन्तु बिन्दु के कारण १ का डेढ़गुनी अर्थात कुल डेढ़ मात्रा प पर मानी जायगी।

इसी प्रकार प॰ में प पर कुल मात्रा २×१½ = ३ होगी। बिन्दु का प्रयोग अब लगभग बन्द हो गया है और मात्राओं को बढ़ाने के लिए बिन्दु के स्थान पर अवग्रह (S) का प्रयोग होने लगा है। किसी स्वर का उच्चारण लंबा करने के लिए उसके आगे जितने चाहें अवग्रह लगाकर उनके नीचे इच्छानुसार मात्राएँ दी जा सकती हैं जैसे डेढ़ मात्रा का प इस प्रकार लिखेंगे प.—S, ढाई मात्रा का प इस प्रकार लिखेंगे : प S या प SS इत्यादि। पहले उच्चारण के लिए अवग्रह नहीं लगता था बल्कि डेढ़गुना लम्बा करने के लिए तो बिन्दु और किसी अन्य समय तक लम्बा उच्चारण करने के लिए तो बिन्दु और उस समय का चिह्न देकर उसके नीचे ɹ यह जोड़ दिया जाता था जैसे प पर ढाई मात्रा दिखाने के लिए ऐसे लिखते थे —प ɪ। इसी प्रकार प पर सवा मात्रा इस प्रकार लिखेंगे : प ɪ̊ इत्यादि। इसी प्रकार विश्राति के लिए मात्रा चिह्न के नीचे केवल एक खड़ी पाई जोड़ी जाती थी जैसे आधी मात्रा की विश्राति। चौथाई मात्रा की विश्रांति। इस प्रकार दिखलाई जाती थी। आजकल विश्राति का चिह्न कौमा (,) है जैसे प पर एक मात्रा रुककर आधी मात्रा की विश्रातिं करनी हो तो ऐसी लिखेंगे — प, । इस प्रकार उच्चारण का चिह्न (S) और विश्रावि का चिह्न (,) माना जाता है। आजकल सरलता के लिए अवग्रहों का प्रयोग बहुत बढ़ गया है। तिस्र जाति के चिह्नों की छपाई में कठिनाई होने से उनके लिए स्वरों के नीचे ३, ६ आदि लिख दिये जाते हैं।

मे तीनों सप्तकों के लिए तीन खाने बनाए जाते थे जैसे :—

तार।

मध्य।

मंद्र।

तार के खाने में तार सप्तक के स्वर, मध्य के खाने में मध्य सप्तक के स्वर और मंद्र के स्वर लिखे जाते थे और गीत के शब्द नीचे लिखे जाते थे। इस विधि में स्थान बहुत लगता था। आजकल इसे सरल बना दिया। एक ही पंक्ति में सब स्वर लिखे जाते हैं और तार स्वरों के ऊपर तार सप्तक का चिह्न खड़ी पाई, जोड़ दिया जाता है और मंद्र सप्तक के स्वरों के ऊपर बिन्दु लगा दिया जाता है। मध्य स्वरों में कोई चिह्न नहीं लगता जैसे षड्ज = सा, मंद्र षडज = सा और मध्य षडज = सा।

शुद्ध, कोमल और तीव्र स्वरों के चिह्न भी पहले बहुत कठिन थे —शुद्ध स्वर = ᐟ म कोमल = ᐟ म और तीव्र X। आजकल शुद्ध का कोई चिह्न नहीं मानते। कोमल स्वर नीचे हलंत लगा देते हैं जैसे ग्। तीव्र स्वर के नीचे उलटा हलंत है जैसे म परन्तु कभी कभी छपाई की सुविधा के लिए तीव्र म पर भी हलंत ही लगा देते हैं (म्) अर्थात विकृत का चिह्न ही हलंत बन जाता है—

कण स्वर का चिह्न अभी हाल में ही इस पद्धति में अन्य पद्धतियों से लिया गया है $\overset{\text{ध}}{\text{प}}$ में पंचम को धैवत का कण अथवा स्पर्श दिया गया है। मींड के लिए ऊपर गोलाई लिए हुए रेखा खींची जाती है—प ग।

सम का चिह्न १ खाली का चिन्ह + और विभिन्न तालियों के स्थानों पर उनकी मात्राओं की संख्या लिख दी जाती है जैसे

झपताल की तालियों के स्थानों पर ३ और ५ लिखा जायगा। आवर्त की समाप्ति पर एक खड़ी रेखा। स्थाई की समाप्ति पर रेखायें ॥ तथा अंतरे की समाप्ति पर तीन रेखाएँ ॥। लगाई जाती हैं

जिस प्रकार स्वरों को अवग्रह द्वारा लंबा करते हैं उसी प्रकार अक्षरों को लंबा करने के लिए प्रत्येक अवग्रह के नीचे बिंदु लगाया जाता है जैसे

प ऽ ऽ प
रा ० ० म

भातखण्डे पद्धति

स्वर्गीय पं० विष्णु नारायण भातखंडे द्वारा निर्मित स्वरलिपि-पद्धति अधिक सरल और प्रचार में सहायक हैं। इसी पद्धति की मुख्य विशेषता, जिसके कारण वह विष्णुदिगम्बर पद्धति से सर्वथा पृथक हो जाती है यह है, कि उस में विभिन्न मात्राओं और मात्रांशों के अलग-अलग चिह्नों की भरमार नहीं हैं वरन् केवल कौमा (,) तथा नीचे लगने वाले अर्धचन्द्राकार कोष्ठक की सहायता से सब प्रकार की मात्राएँ वा मात्रांश स्पष्टतः लिखे जा सकते हैं। एक मात्रा का कोई चिह्न नहीं होता। कोई स्वर अकेला लिखने से ही उस पर एक मात्रा समझी जाती है, जैसे साग म प में चारों स्वर एक मात्रा के हैं। एक से अधिक मात्रा दिखलाने के लिये एक-एक मात्रा की एक-एक लेटी लाइन (डैश) लग जाती है जैसे दो मात्रा ग पर रुकना हो, तो ग लिखकर आगे एक लाइन लगेगी (ग —)। प पर चार मात्राएँ इस प्रकार दिखलाएँगे (प — — —), इत्यादि। अब यदि दो स्वर एक मात्रा में गाना है तो दोनों को एक कोष्ठक में रखेंगे→ पध । यहाँ प और ध, दोनों पर आधी-आधी मात्रा हुई। इसी प्रकार कोष्ठक में जितने स्वर होंगे वे १ मात्रा में

. .र बट जायँगे। पधनी में तीनों स्वर १/३ मात्रा के हैं पधनीसां में प्रत्येक स्वर पर चौथाई मात्रा हैं इत्यादि।

कौमा द्वारा कोष्ठक की पूरी मात्रा दो आधी-आधी मात्रा के विभागों में बँट जाती है , और कौमा की बाईं ओर के सभी स्वरों में आधी मात्रा बराबर बराबरी बँटती है और इसी प्रकार कौमा को दाहिनी ओर के भी सब स्वर आधी मात्रा में बराबर ढंग से बँट जाते हैं, जैसे यदि कौमा की बाईं ओर दो स्वर हैं तो दोनों पर चौथाई-चौथाई मात्रा होंगी। यदि कौमा की बाईं ओर तीन स्वर हैं तो प्रत्येक पर १/६ मात्रा होगी। इसी प्रकार कौमा की बाईं ओर ४ स्वर होंगे तो चारों की १/८, १/८ मात्रा होगी इत्यादि उदाहरणार्थः—

स:, रे ग में सा = १/२ रे = ग = १/४

सारेग म में सा = रे = ग = १/६, म = १/२

सारेगम, पध में सा = रे = ग = म = १/८ प = ध = १/४

कोष्ठक के भीतर ही उच्चारण का चिह्न अर्थात् लेटी लाइन (डैश) लगने से डैश को भी अन्य स्वरों की भाँति आवश्यक मात्रांश मिल जाता है जैसे प,—ध में, डैश और ध दोनों पर चौथाई मात्रा हुई, अतः प पर कुल मात्रा १/२ + १/४ = ३/४ हुई और ध पर चौथाई मात्रा रही। इसी प्रकार सारे,— में सा = १/४, रे = १/४ + १/२ = ३/४

सारे – –ग में सा = १/८ रे = ३/८, ग = १/२

सारे –ग में सा = ग = १/६ रे = १/३

यदि कोष्ठक को दो कौमों द्वारा तीन बराबर भागों में बाँटा जाय तो तीनों भाग १/३ मात्रा के होंगे और उन विभागों में जितने स्वर लिखे जायँगे १/३ मात्रा बराबर बराबर बँट जायगी इसी प्रकार

चार कौमा द्वारा पूरी मात्रा के चार बराबर भाग चौथाई-चौथाई मात्रा के बन जायेंगे, इत्यादि। उदाहरणार्थ,

सारे, ग, मप में सा = रे = ½, ग = १, = म = प = ½

सा, रेग, म — प में सा = ½, रे = ग = ¼, म = ½, प = ½

सारेग, मपध, नी, सां में सा = रे = ग = म = प = ध = ⅓

और नी = सां = ½

इस प्रकार किसी ढंग के मात्रांश को लिखा जा सकता है और इस प्रकार लिखकर गाना भी सरल हो जाता है क्योंकि पूरी मात्रा के स्पष्ट विभाग (चाहे २ हों या ३, ४ आदि) मस्तिष्क में बन जाते हैं, जिनमें विभिन्न स्वर सरलता से बँट जाते हैं।

स्वर के सम्मुख डैश और अक्षरों को लम्बा करने के लिए डैश के नीचे अवग्रह (ऽ) लगता है जैसे—

प— —प

रा ऽ ऽ म

भात खंडे पद्धति में तार स्वर के ऊपर बिन्दु (सां) और मंद्र स्वर के नीचे बिन्दु (सा़) लगता है। मध्य स्वर पर कोई चिह्न नहीं होता शुद्ध स्वर पर भी कोई चिन्ह नहीं होता। कोमल स्वर के नीचे लेटी लाइन ग) और तीव्र स्वर के ऊपर खड़ी लाइन (मं) लगती है। सम का चिन्ह × और खाली का चिन्ह ० है। ताली के स्थान पर ताली की संख्या २ ३ ४, ५ आदि लिखी जाती है जैसे झपताल में दूसरी ताली तीसरी मात्रा पर और तीसरी ताली आठवीं मात्रा पर पड़ती है अतः तीसरी मात्रा के नीचे २ लिखा जायगा और ८वीं के नीचे ३ लिखा जायगा। प्रत्येक विभाग के बाद एक खड़ी लाइन रहेगी :—

कण स्वर को मूल स्वर के ऊपर 'क्षुद्र मार्ई' और लिखा जाता
है :— ^{ध} ^{प}य ^{ध}प। यह वास्तव में भातखंडे पद्धति की वस्तु है जो
अब अन्य पद्धतियों में भी अपनाई जाने लगी है। मींड का चिन्ह
⌒ ही है। चार द्रुत स्वरों का प्रयोग फंस द्वारा होता है जैसे (प)
का अर्थ होगा धपमंप (अर्थात् पहले आगे का स्वर, फिर लिखा
हुआ स्वर, पिछे का स्वर और फिर लिखा हुआ स्वर)। (मा)
का अर्थ हुआ रेसानीसा इत्यादि।।

भातखंडे स्वर लिपि पद्धति में यदि विश्रांति का एक पृथक
चिन्ह V जोड़ दिया जाय। तो एक कमी पूरी हो जाय। उदाहरणार्थ यदि एक मात्रा में प पर ½ मात्रा फिर ¼ मात्रा की विश्रांति
और अंत में ¼ मात्रा का ध लिखना हो तो विश्रांति के पृथक चिन्ह
के बिना काम न चलेगा। विष्णुदिगम्बर पद्धति में यह स्वर-संगीत
इस प्रकार लिखेंगे :—प , ध और भातखंडे पद्धति में उसे इस
प्रकार लिखना पड़ेगा :—प V v ध।

भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास

संगीत की उत्पत्ति

संगीत और उसके राग रागिनियों के उद्गम के विषय में अनेक किंवदंतियां प्रचलित हैं और भारतीय आध्यात्मिकता का पुट इस क्षेत्र में भी स्पष्ट दिखलाई देता है, जिसके फल स्वरूप पुरातन संगीत का सम्बन्ध त्रिदेवों और अन्य देवी देवताओं के साथ जोड़ा जाता रहा है, इस विषय के कुछ मत यहां दिये जाते हैं :—

(१) संगीत विद्या का आविष्कार स्वयं ब्रह्मा ने अथवा उसकी शक्ति सरस्वती ने किया। सरस्वती को कला एवं ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी माना जाता है और वे सदा से वीणा-युक्त चित्रित की गई हैं। ब्रह्मा और सरस्वती के पुत्र नारद ने वीणा का आविष्कार किया वीणा ही भारत का प्राचीनतम वाद्य है। पृथ्वी पर प्रथम संगीतज्ञ भरत मुनि अवतीर्ण हुए।

(२) संगीत की उत्पत्ति ब्रह्मा से हुई। ब्रह्मा ने यह कला शिव को दी और शिव ने सरस्वती को। सरस्वती ने उसे नारद को सिख लाया और फिर नारद ने उसकी शिक्षा स्वर्ग के गंधर्व किन्नर और अप्सराओं को दी। अनुमान है कि इनके द्वारा ही संगीत का ज्ञान भरत, हनुमान और नारद आदि महर्षियों को प्राप्त हुआ और ये महर्षि इस पृथ्वी पर कला के प्रचार के लिये भेजे गये।

(३) शिव ने गायन, वादन और नृत्य कलाओं का समावेश करने वाली संगीत कला को जन्म दिया। शिव का ताडव नृत्य प्रसिद्ध ही है जिसे सम्पूर्ण सृष्टि चक्र का एक प्रतीक माना जाता

। संगीत के प्रथम साधक, जो इस पृथ्वी पर हुए थे भरत ऋषि जाते हैं और कहा जाता है कि भरत ने ही स्वर्ग की अप्सराओं को नृत्य सिखलाया और तभी अप्सराओं ने शिव के सम्मुख प्रदर्शन दिया। वीणा वादन और गायन करते हुए पृथ्वी तथा स्वर्ग में विचरण करने वाले मुनि नारद ने मनुष्यों को संगीत कला सिखलाई। इन्द्रदेव के स्वर्ग के निवासियों में अनेक संगीतज्ञ थे जिनमें गंधर्व गायक थे किन्नर वादक थे और अप्सरायें नृत्य निपुण था। "गंधर्व से ही संगीत कला का आदि मुख्य ग्रन्थ "गंधर्व वेद" के नाम से पुकारा गया।

(४) संगीत विद्या ब्रह्मा से आई, उसका प्रचार महादेव और नारद द्वारा हुआ, और प्रदर्शन मान नायकों द्वारा हुआ।

(५) सरस्वती ने वीणा बनाई। नारद ने अनेक वर्षों तक योग की देन दी। शिव ने अपने ज्योतिर्मय ताडव नृत्य द्वारा सम्पूर्ण विश्व को हिला दिया। पार्वती के सोते समय की मुद्रा या शारीरिक अवयवों के सुन्दर भाव को देखकर ही शिव ने रुद्र वीणा बनाई। गंधर्व अप्सरा आदि देवों के सम्मुख अपनी कलाओं का प्रदर्शन करते थे। बाद में स्वर्ग की इस संगीत-साधना का प्रभाव इस पृथ्वी पर भी पड़ा।

(६) शिव ने अपने पाँच रागों की उत्पत्ति की और छठा राग पार्वती द्वारा निकाला। फिर ब्रह्मा ने तीस रागिनियाँ बनाईं। शिव जी के पूर्व पश्चिम, उत्तर दक्षिण व आकाशोन्मुख मुखों से क्रमशः भैरव हिन्डोल, मेघ दीपक और श्री राग निकले और पार्वती के मुख से कौशिक राग निकला।

(७) प्राचीनकाल में चार मुख्य मत प्रचलित कहे जाते हैं जैसे शिव मत (अथवा सोमेश्वर मत) कल्लिनाथ मत (अथवा कृष्ण मत)

भरत मत और हनुमान मत। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य नामों के मत भी सुनने में आये हैं जैसे, ब्रह्म मत, नारद मत, रागार्णव मत आदि। इन विभिन्न मतों के विषय में बहुत भ्रम फैला हुआ है और जब तक प्रमाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती, यह फैला ही रहेगा।

उपरोक्त सातों मतों में कहाँ तक सत्य है, यह कहना कठिन ही क्या, असम्भव है। हाँ, समुचित सामग्री की खोज करके यदि ढंग से अध्ययन किया जाय तो कम से कम एक दूसरे मतों का परस्पर विरोध अवश्य मिटाया जा सकता है।

संगीत इतिहास काल-विभाजन

संपूर्ण संगीत के इतिहास को चार काल में विभाजित किया जा सकता है. अति प्राचीन, प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल। इसमें प्राचीन मध्य और आधुनिक कालों से दो दो उप-विभाग किये जा सकते हैं। यहाँ पर विभिन्न कालों का जो नामकरण दिया जा रहा है उसका आधार उनकी कोई मुख्य विशेषता अथवा प्रवृत्ति है :—

(१) अति प्राचीन काल (वैदिक काल)—२००० ईसा पूर्व से १००० ईसा पूर्व तक।

(२) प्राचीन काल :—(अ) पूर्व प्राचीन काल (संदिग्ध काल) —१००० ईसा पूर्व से १ ईसवीं तक।

(ब) उत्तर प्राचीन काल (भरत काल)–१ ई० से ८०० ई० तक

(३) मध्य काल : (अ) पूर्व मध्य काल (प्रबन्ध काल—८०० ई० से १३०० ई० तक।

(ब) उत्तर मध्य काल :(विकास काल)–१३०० ई० से १८०० ई० तक।

(४) आधुनिक काल :—(अ) प्रारम्भिक आधुनिक काल (साधना काल)—१८०० ई० से १६०० ई० तक।

(च) समसामयिक आधुनिक काल (प्रचार काल)—१६०० से १९५० ई० तक।

अति प्राचीन काल (वैदिक काल)
(२००० ईसा पूर्व—१००० ईसा पूर्व)

यह प्रसिद्ध ही है कि सामवेद के मंत्रों का पाठ संगीतमय होता रहा है और आज भी उसकी विधि एक बड़े अंश में सुरक्षित कही जाती है। वेदों का प्रारम्भिक समय कुछ लोग ३००० ईसा पूर्व, कुछ २५०० कुछ २००० और कुछ १८०० ईसा पूर्व मानते हैं परंतु साधारणतया २००० वर्ष पूर्व का समय अधिक समीचीन ज्ञात होता है। १००० ईसा पूर्व तक किसी न किसी रूप में संगीत का वैदिक रूप ही चलता रहा यद्यपि आगे भी सामवेद की ऋचाओं का गायन लगभग उसी ढंग से होता रहा है। वैदिक संगीत के विषय में जो कुछ जानकारी प्राप्त हो सकी यह निम्नलिखित सामग्री द्वारा हुई है :—(१) परम्परागत सुरक्षित संगीतमय वेद पाठ, (२) सामवेद संहिता, (६) ऋक् प्रतिसाख्य, तैत्तरीय प्रतिसाख्य, अथर्व वेद प्रतिसाख्य, पाणिणि शिक्षा तथा पाणिणि अष्टाध्याय, नारदीय शिक्षा मतंग कृत वृहद्देशी आदि ग्रंथ।

कहते हैं कि सर्वप्रथम, "साम्गान" में तीन स्वरों का प्रयोग होता था। नारदीय शिक्षा के सामसुत्रयन्तर' और मतंग कृत वृहद्शी के" त्रिस्वरश्चैव सामिक" से भी यही तात्पर्य निकलता है। इन तीन स्वरों के नाम उदात्त अनुदात्त और स्वरित हैं। पाणिणि और नारद, दोनों ने अपने शिक्षा-ग्रन्थों में इनका उल्लेख इस प्रकार किया है— 'उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः"। इन स्वरों का अभिप्राय वास्तव में सामगान के पाठ में स्वराघात से था जो मुख्यतः गीतात्मक होता था। उदात्त ऊँचे स्वर को और

अनुदात्त नीचे स्वर को कहते थे। स्वरित के अर्थ के विषय में बड़ा मत भेद है। पाणिनि अष्टाध्यायी के अनुसार 'स्वरित' में उदात्त और अनुदात्त का समन्वय होता था :—उच्चैरुदात्तः नीचैरनुदात्तः समाहारः स्वरितः' इस 'समाहार' का भाव अस्पष्ट है। इसके अतिरिक्त विभिन्न ग्रंथों में अथवा विभिन्न कालों में 'स्वरित' का अर्थ बदलता भी गया है। कहीं तो स्वरित का अर्थ उदात्त और अनुदात्त के मध्य का स्वर है, कहीं उदात्त से ऊँचे स्वर का अर्थ है और कहीं अनुदात्त से भी नीचे का, इत्यादि।

वेदों के इन तीन स्वरों का क्रमशः ४, ५ और फिर ७ स्वरों का विकास हुआ। एक स्वर मे 'ऋक्' दो स्वरों में 'गाथा' और तीन स्वरों में 'सामन' गाये जाते थे और चार स्वरों का समूह भी 'स्वरांतर' नाम से मिलता है।

सामने स्वर अवरोहात्मक थे, ऐसा निष्कर्ष अनेक ग्रंथकारों ने निकाला है और यह समुचित भी प्रतीत होता है, प्राचीन तीन स्वर उदात्त, अनुदात्त और स्वरित में से उदात्त को गांधार स्वर के समकक्ष रखा गया है और अन्य दो स्वर ऋषभ और षड्ज माने गये हैं। इस प्रकार प्राचीन तीन स्वरों का समूह ग रे सा था जो आगे चल कर ग रे सा नी बन गया। ऐसा ही चतुर्स्वरांतर (टेट्राकार्ड) प्राचीन काल में ग्रीस देश में बना था। यह स्वरांतर षड्ज-मध्यम भाव का था।

आगे चलकर नीचे एक स्वर धैवत भी जुड़ गया। गांधार प्रारम्भिक स्वर होने के कारण ही वास्तव में सर्वप्रथम गांधार ग्राम कल्पना हुई थी। बाद में गाधार के ऊपर एक स्वर मध्यम भी आ गया। वैदिक चार स्वरों के नाम प्रथमा, द्वितीया, तृतीया और चतुर्थी, सर्व प्रथम ऋक्प्रतिसाख्य ग्रन्थ में मिलते हैं (४०० वर्ष ईसा पूर्व। तैत्तरिय- प्रतिसाख्य में प्रथमा से स्वर 'क्रुष्ट' के

म से मिलता है (क्रुष्टा = ऊँचा)। कभी कभी गांधार से ऊँचा स्वर मध्यम भी प्रयुक्त होने लगा।

वैदिक चार स्वरों का औड़व मन्त्रक अवश्य बना होगा जो या तो म ग रे सा ध होगा (आज भी दक्षिण में यह कथन प्रसिद्ध है कि प्राचीन आभोगी राग में सामवेद गाया जाता था। आभोगी राग के स्वर सा रे ग म ध) अथवा ग रे सा नी ध होगा। बाद में नीचे के दो स्वर तचम और मध्यम और जुड़ गये और इस प्रकार कुल सात स्वरों का अस्तित्व आया। वैदिक सप्त स्वरों का मिलान आगे के सात स्वरों से इस प्रकार किया जा सकता है :—

क्रुष्टा	—	मध्य
प्रथम	—	गांधार
द्वितीया	—	ऋषभ
तृतीया	—	षड्ज
चतुर्थी	—	निषाद
मद्र	—	धैवत
अतिस्वर	—	पंचम

पाणिनि शिक्षा और नारदीय शिक्षा में एक श्लोक इस प्रकार का मिलता है :—

> उदात्ते निषाद गान्धारौ, अनुदात्त ऋषभ धैवतौ।
> स्वरित प्रभवा ह्येते, षड्ज मध्यम पंचम ॥

जिससे यह अभिप्राय निकलता है कि उदात्त के अंतर्गत निषाद और गांधार स्वर, अनुदात्त के अंतर्गत ऋषभ और स्वरित के अंतर्गत शेष तीन स्वर षड्ज, मध्यम और पंचम सन्निहित हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि इतने सुदूर पूर्व काल में भी स्वर-संवादित्व का महत्व स्वीकृत था।

वैदिक काल में सात स्वरों का आविर्भाव हो गया था यह मान्डूकि शिक्षा की इस पंक्ति से भी स्पष्ट लक्षित है—'सप्त स्वरास्तु गीयन्ते सामभिः सामगैर्बुधैः।'।

जब गांधार के ऊपर एक मध्यम स्वर की कल्पना हुई तभी से मध्यम ग्राम बना। नान्दीय शिक्षा में वैदिक सात स्वरों के मध्यम से आरम्भ करते हुए इस प्रकार लिखा है :—

य. सामगाना प्रथमः स वेणोर्मध्यमः स्वरः।
यो द्वितीय' स गान्धार स्तृतीय स्त्वृषभः स्मृतः।
चतुर्थ षड्ज इत्याहुर्निषादः पञ्चमो भवेत।
षष्ठतु धैवतो ज्ञेय. सप्तम पञ्चमः स्मृत'॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिककाल में संगीतसाधना काफी ऊँची उठ चुकी थी। वैदिक सूची में अनेक वाद्यों का उल्लेख इस बात की ओर भी अधिक पुष्टि करता है। उदाहरणार्थ उस सूची में अवनद्ध वाद्य में दु दुभी, आदम्बर, भूमि दु दुभी वानस्पति, अघाती। तत वाद्यों मे काड-वीणा, ककरी वीणा, वारण्य (१०० तारों युक्त वीणा) वीणा और सुषिर वाद्यों में तूणव, नादि और बाकुर आदि का उल्लेख है। छादोग्य और वृहदारण्यक उपनिषदों में (६००) ईसा पूर्व) सामवेद के गायन का उल्लेख है वृहदारण्यक मे तो अनेक वाद्यों का भी उल्लेख है जो वैदिक कालीन बतलाये गए हैं।

(२ अ) पूर्व प्राचीन काल (संदिग्धकाल)

(१००० ईसा पूर्व—१ ईसवी)

सामान्य परिस्थिति .—इस काल के अंतर्गत पौराणिक और बौद्ध काल आ जाते हैं जिन में संगीत-साधना चलती तो अवश्य ही रही किंतु कोई ग्रन्थ ऐसा नहीं मिलता जिससे उस काल के संगीत का स्पष्ट स्वरूप पता चल सके। इसीलिए संगीत की दृष्टि से

इस काल को संदिग्ध काल कहा जा सकता है। इस काल के जो उपनिषद आदि ग्रन्थ मिलते हैं उनसे यह सिद्ध होता है, कि संगीत का प्रचार बराबर चालू रहा है बल्कि उसका सतत् विकास भी होता गया है। इस काल के कुछ ग्रन्थ ये हैं :—

उपलब्ध सामग्री (१) 'छांदोग्य' और बृहदारण्यक' उपनिषदों में (६०० ईसा पूर्व) सामगायन का उल्लेख है और बृहदारण्यक में अनेक संगीत वाद्यों के नाम मिलते हैं, यह पहले बतलाया ही जा चुका है। (२) शास्त्र के रूप में संगीत का वर्णन सर्व प्रथम 'ऋक्प्रतिसांख्य' (४०० ईसा पूर्व) में मिलता है, जिसमें तीन स्थानों सप्तस्वरों आदि का उल्लेख है। लगभग इसी समय (५०० ईसा पूर्व) ग्री के पाइथागोरस् ने संगीत ने संगीत शास्त्र का एक नियमित स्वरूप बनाया था। (५०० ईसा पूर्व—२०० ई०) सप्तस्वरों और गांधर ग्राम का उल्लेख है और साथ ही स्वर संवादित्व का भी संकेत है। (४) रामायण में (४०० ईसा पूर्व २०० ई०) गायन का अनेक बार उल्लेख मिलता हैं। संगीतिक उपमायें भी व्यवहृत हुई है। रामायण में जातियों का उल्लेख भेरी, दुंदुभी. मृदंग, घट, डिमडिम आदि अवनद्य वाद्य और मुड्डुक आदम्बर आदि सुषिर वाद्य और वाद्य और वीणादि तंत्र वाद्यों का उल्लेख भी रामायण में मिलता है। (५) व्याकरणाचार्य पणिणि ने (३२६ ईसा पूर्व) ने अपनी शिक्षा और अष्टाध्यायी ग्रन्थों मे संगीत सम्बन्धी अनेक उल्लेख किये हैं।

(२ ब) उत्तर प्राचीन काल (भरत काल)

(१ ईसवी—८०० ईसवी)

सामान्य प्रवृत्तियाँ :—इस काल में ही भरत का नाट्यशास्त्र ग्रंथ लिखा गया जो भारतीय संगीत का आदि और प्रमुख ग्रन्थ

माना जाता है। भरत के समय के विषय में बहुत मतभेद है। ^री शताब्दी से ६ठवीं शताब्दी तक के बीच में यह मतभेद है। ४वीं शताब्दी अधिक उचित जान पड़ती है। अन्य ग्रंथ जो इस काल में लिखे गये सभी भरत के नाट्य शास्त्र में प्रति पादि विषयों के समानान्तर चले हैं और इसी काल में आकर हमें तीन ग्रामों, इक्कीस मूर्छनाओं, सप्तस्वर और बाईस श्रुतियों आदि का वर्णन मिला है। दूसरी विशेषता जो इस काल में मिलती है, वह यह कि संगीत में गायन-वादन के साथ नृत्य और नाट्य का भी बहुत अधिक महत्व हो गया था। तीसरी विशेषता जाति ५न की थी। कदाचित भरत से कुछ पूर्व से जातियों का गायन प्रचलित था।

इस काल में राग-गायन उस रूप में न था जिसमें अब है भरत ने तो राग शब्द का उल्लेख तक नहीं किया है। कुछ अन्य ग्रन्थकारों ने ग्रामरागों का वर्णन किया है। ये ग्रामराग जातियों से बनते थे। मुख्य १८ जातियों में से सात शुद्ध और ग्यारह विकृत मानी जाती थीं। दक्षिण में इस काल में जो भक्ति आंदोलन चला उसके फल स्वरूप भी संगीत का बहुत प्रचार बढ़ा।

उपलब्ध सामग्री :—(१) दक्षिण के एक तामिल-ग्रन्थ, 'पारिपाडल' में (१००—२०० ईसवी) याल नामक एक वीणा सदृश वाद्य का वर्णन है जिसके कुछ प्रकारों मे १००० तारों तक का अस्तित्व पता चलता है। बाद की इसी ग्रन्थ में कुछ प्राचीन सात 'पण्इल' का भी उल्लेख है जो कदाचित कुछ उसी प्रकार के स्वर समूह होंगे जैसे आगे चलकर जाति और राग हुये।

(२, ३०० ई० के एक बौद्ध नाटक में, सिलापद्दिगारम' में भी याल, वीणा तथा अवनद्ध और सुषिर वाद्यों के बजाने वालों का उल्लेख है। इसमें सात स्वरों और तत्कालीन प्रचलित रागों का भी

पर्याप्त है। स्वर नाम अवश्य भिन्न हैं और 'राग' शब्द व्यवहृत नहीं है। ३३० ई० में पोप सलविस्टर और ३७४—३६७ ई० में संट ऐम्ब्रोज ने यूरोप में संगीत-शास्त्र के अध्ययन का विकास किया। कालिदास (४०० ई०) ने भी अपने नाटकों में संगीत सम्बन्धी उल्लेख किए हैं।

(३) भरत का नाट्यशास्त्र' ४ थी शताब्दी (४००—५०० ई०) की रचना मानी जा सकती है। यह वास्तव में एक नाटक संबन्धी ग्रन्थ है किन्तु इसके २८ वें, २९ वें और ३० वें अध्यायों में संगीत सम्बन्धी शास्त्र दिया है, जिसके अंतर्गत श्रुति स्वर ग्राम, मूर्छना और जातियों का वर्णन आ जाता है। भरत ने विकृत स्वरों में केवल दो का अर्थात् काकली निषाद और अंतर गांधार का वर्णन किया है और 'राग' शब्द कहीं नहीं लिखा है। 'ग्राम रागों' का भी कोई उल्लेख नहीं है। भरत ने षड्ज ग्राम और मध्यम ग्राम केवल इन्हीं दो ग्रामों का वर्णन किया है। गांधार ग्राम का उल्लेख भी नहीं। नाट्यशास्त्र में स्वर सवादित्व का पूर्ण ध्यान है वादी, संवादी, विवादी अनुवादी स्वरों का वर्णन है द्विश्रुतिक, त्रिश्रुतिक और चतुः श्रुतिक स्वरों का भी वर्णन है। षड्ज ग्राम की सात और मध्य ग्राम की ग्यारह मिलाकर कुल अठारह जातियाँ भरत ने लिखी हैं इन्हीं १८ जातियों का फिर दो शिर्षको और शुद्ध विकृत जातियों में विभाजित किया है। शुद्ध जातियाँ सत हैं, चार षड्ज ग्राम की (षाड्जी, आर्षभी धैवती और नैषादी) और तीन मध्यम ग्राम की (गांधारी, मध्यमा और पंचमी)। विकृत जातियाँ ग्यारह हैं जिनमे षड्ज वा मध्यम ग्राम की शुद्ध जातियों का सम्मिश्रण है भरत में 'जाति' के दस लक्षण लिखे हैं :—ग्रह, अंश, तार, मन्द्र न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाड्वत्व और औड़वत्व।

(४) भरत के दत्तिला द्वारा लिखित पुस्तक 'दत्तिलम्'

भी उल्लेखनीय है। बृहद्देशी के रचयिता मतंग मुनि ने भी दत्तिला का नाम दिया है जिससे प्रमाणित होता है कि दत्तिला का समय मतंग से पूर्व था। दत्तिला को भी हम वीं शताब्द (४००-४००ई०) का ही मान सकते हैं। भरत की भांति दत्तिला ने भी ग्राम शब्द की व्याख्या नहीं दी है किन्तु भरत के विपरीत उसने गांधार ग्राम का साधारण उल्लेखमात्र किया है। भरत ने मूर्छना की परिभाषा दी है किन्तु दत्तिला ने नहीं दी है। समवादी स्वरों की दूरी भरत के समान दत्तिला ने भी नौ अथवा तेरह श्रुतियों की मानी है परंतु विवादी स्वरों में भरत ने बीस श्रुतियों का अन्तर माना है और दत्तिला ने दो श्रुतियों का। यह कोई वास्तविक अन्तर नहीं है केवल दृष्टिकोण का भेद है। दत्तिला ने भी भरत की अठारह जातियाँ स्वीकार की हैं। (५) भरत और दत्तिला के बाद मतंग मुनि द्वारा लिखित 'बृहद् देशी' ग्रंथ मिलता है जिसका समय छठी शताब्दी माना जा सकता है। जिस प्रकार भरत के समय के विषय में मतभेद हैं (३ री, ४ थी. ५ वीं और कुछ के अनुसार ६ ठी शताब्दी), उसी तरह मतंग के समय के विषय में भी अनेक मत हैं। कोई उसे ४ थी और ७ वीं शताब्दी के बीच मानते हैं तो कोई और आगे का किन्तु मतंग नारद (संगीत मकरंद के रचयिता) के पूर्व का अवश्य था। मतंग ने ग्राम और मूर्छना शब्दों की विस्तृत परिभाषा दी है और गांधार ग्राम उल्लेख किया है। समवादी स्वरों में ६ अथवा १३ श्रुतियों का अन्तर और विवादी स्वरों मे २ श्रुतियों का अन्तर मतंग को भी मान्य है। बृहद् देशी में सामगायन के प्रारम्भिक तीन स्वरों के प्रयोग भी संकेत है– त्रिस्वरश्चक सामिकः'

मतंग ने ही सर्व प्रथम संगीत शास्त्र के अन्तर्गत ग्राम-रागों का वर्णन कर 'राग' शब्द का प्रयोग किया, जो आज के संगीत का प्राण है। किंतु उसके ग्रामराग आधुनिक रागों के सदृश न थे।

मतंग ने जातियों के जो दस लक्षण दिये हैं वे भरत के समान ही हैं। मतंग ने लिखा है कि उसके समय में सात जाति प्रकार प्रचलित थे जिनमें से एक प्रकार राग-जाति का भी था। राग जाति के विषय में मतंग ने लिखा है कि—

'स्वरवर्णविशेषण ध्वनि भेदेन वा पुनः।
रज्यते येन यः कश्चित् स रागः संमत, सताम्॥

इससे यह ध्वनित होता है कि प्राचीन जाति गायन के लक्षण ही धीरे-धीरे राग गायन में सम्मिलित हो गये। मतंग की राग जातियों के नाम इस प्रकार हैं:—१ टकी २ सावीरा ३ मालव पंचम ४ षाड्व ५ षट्राग ६ हिंडोलक ७ टक्क कैशिका ये ही मतग के मुख्य ग्राम राग कहे जाते हैं जिनकी उत्पत्ति जातियों से हुई है।

(३) 'नारदीय शिक्षा' नामक एक ग्रन्थ नारद का लिखा मिलता है जिसके रचना काल के विषय में अभी कोई निर्णय नही हो सका है। कुछ विद्वान इसे ३री और ६ ठी शताब्दी के बीच की रचना मानते हैं कुछ १० वीं और १२ शताब्दी के बीच की अधिक समुचित यहाँ पता चलता है कि यह ७ वीं शताब्दी की रचना है क्योंकि इसमे भी ग्राम रागों का वर्णन है और सामवेदीय स्वरों का विशेष स्थान है। १० वीं शताब्दी की रचना में तो राग का आधुनिक रूप पर्याप्त अंश में बन चुका था परन्तु नारदीय शिक्षा मे उसका वर्णन नहीं है, उसमें तो केवल प्राचीन सात ग्राम रागों का उल्लेख है जिनका नाम दक्षिण के कुदुमियामलाई (पुदुदुकोटाई, मद्रास) स्थान मे एक शिलालेख मे भी मिलता है। यह शिलालेख ७ वीं शताब्दी का ही माना गया है। इस लेख में नारदीय शिक्षा से मिलती हुई सात जातियों अथवा ग्राम रागों (नारद के नामकरण के अनुसार), सात स्वर, श्रुतियों और अतर तथा काली स्वर नामों का उल्लेख है।

नारदीय शिक्षा के सात मुख्य ग्राम राग ये हैं:—१ षाड्व २ पंचम ६ मध्य ग्राम ४ षड्ज ग्राम ५ साधारिता ६ कैशिक मध्यम ७ मध्य ग्राम (कैशिक युक्त) कुछ विद्वानों का विचार है कि इन्हीं से आगे चलकर छः राग बने। नारदीय शिक्षा में एक प्राचीन ग्रन्थकार कश्यप का भी उल्लेख किया है परन्तु कश्यप नाम के किसी व्यक्ति का कोई ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

(७) सातवीं और आठवीं शताब्दियों में दक्षिण भारत में भक्ति-आंदोलन चलने के कारण उस ओर संगीत का प्रचार भजनों द्वारा अधिक हुआ। लगभग इसी समय यूरोप में भी धार्मिक संगीत का विकास हुआ था।

(३अ) पूर्व मध्यकाल (प्रबन्धकाल)

(८०० ई०—१२०० ई०)

सामान्य प्रवृत्तियाँ:—इस काल के प्रतिनिधि ग्रन्थ नारद कृत संगीत मकरंद (८०० ई०) और शारङ्गदेव कृत संगीत रत्नाकर (१२००—१३०० ई०) है। संगीत मकरंद मे प्रथम बार पुरुष राग, श्री राग आदि की चर्चा मिलती है जिसके आधार पर आगे चल कर राग-रागिनी पद्धति का निर्माण हुआ जो उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत की मुख्य विशेषता रही है और इसीलिए कुछ विद्वानों का मत है कि भारतवर्ष में नारद के मकरंद के समय से ही उत्तर और दक्षिण पद्धतियाँ पृथक रूप से विकसित होने लगी। इस पूर्व मध्य काल में ही जयदेव नामक प्रसिद्ध कवि और संगीतज्ञ हुआ जिसके 'गीत-गोविन्द' मे अनेक गीत प्रबन्ध नाम से संकलित हैं। संगीत रत्नाकर से भी यही पता चलता है कि उस समय तक ध्रुपदादि गीतों के स्थान पर प्रबन्ध आदि गीत गाये जाते थे। इसीलिए इस काल का नाम प्रबन्ध-काल अधिक उचित प्रतीत हुआ। इसी पूर्व-

काल में मुसलमानों के आगमन से कुछ पूर्व देशी रियासतों
ीत का बहुत अधिक विकास और प्रचार था जिसके कारण
विशेष काल को भारतीय संगीत का एक स्वर्ण युग भी कहा
या है।

यह स्वर्ण युग लगभग ६ वीं से १२ शताब्दी के बीच में माना
ा सकता है। इसके बाद यवनों के प्रभाव से भारतीय संगीत की
वनति प्रारम्भ हुई और फारस के संगीत के मिश्रण से उत्तर
दुस्तानी संगीत का एक स्वतंत्र निश्चय रूप बना जिसका विकास
कबर के समय में बहुत अधिक हुआ। इसीलिए अकबर के समय
ो भी भारतीय संगीत के इतिहास में स्वर्णयुग कहते हैं।

उपलब्ध सामग्री :—(१) नारद कृत 'संगीत मकरंद' एक
त्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें सर्व प्रथम रागों का वर्गीकरण
रुप राग, स्त्री राग और नपुँसक रागों में हुआ। इसीसे आगे चल
र राग-रागिनी रागपुत्र आदि की पद्धति चली नारद के नाम से
अनेक ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं जैसे नारदीय शिक्षा, संगीत मकरंद. राग-
निरूपण, सारसंहिता, नारदीय संहिता, स्वर मंजरी इत्यादि।
कदाचित नाम के एक से अधिक व्यक्ति हुए हैं। यह तो निश्चित
है कि नारदीय शिक्षा और संगीत मकरंद के रचयिता दो पृथक
नारद थे और नारदीय शिक्षा संगीत मकरंद से प्राचीन ग्रन्थ है
क्योंकि उसमे सामगायन की ध्वनि अधिक है और उसमें ग्राम
रागों का वर्णन है जबकि मकरंद में उस समय के संगत का वर्णन
है जबकि 'राग' का पूर्ण विकास हो चुका था।

संगीत मकरंद का रचना काल कुछ लोग ८ वीं अथवा ६ वीं
शताब्दी मानते हैं और कुछ लोग ७ वीं और ८ वीं शताब्दियों के
बीच में। अधिक समुचित रचना काल ६ वीं शताब्दी में माना जा

सकता है। नारद ने संगीत मकरंद में गांधार ग्राम का वर्णन किया है, यद्यपि वह कुछ स्पष्ट हो गया है। नारद ने सब रागों को पुरुष स्त्री और नपुंसक रागों में विभाजित किया है। पुरुष राग बीस माने जाते हैं।

मकरंद में अन्य प्रकार के राग विभाजन भी हैं। उदाहरणार्थ, पूर्ण कम्पन युक्त रागों का 'मुक्तांग कम्पित', थोड़े कम्पन वाले रागों को 'कम्पविहीन' रागों की श्रेणियों में रक्खा है। तीसरे प्रकार का विभाजन संपूर्ण षाड्व और औडव रागों में है। चौथे प्रकार में रागों को समय के आधार पर चार वर्गों में बांटा है—प्रातर्गेय राग, मध्याह्न कालिक राग और रात्रि गेय राग। राग के समय के नियमों के पालन पर बहुत अधिक बल दिया है।

(२) मुसलमानी आक्रमण से पूर्व की शताब्दियों में ६ वीं से १२ वीं तक भारतीय संगीत का स्वर्ण युग माना गया है जब कि देशी रियासतों में संगीत साधना अपने उच्चतम शिखर पर पहुँची थी। अभाग्यवश इस समय से कोई ग्रन्थ विशेष अथवा अन्य सामग्री प्राप्त नहीं है।

(३) जयदेव का समय १२ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में माना जाता है। जयदेव को उत्तर भारत का प्रथम गायक कहा जा सकता है। इसके ग्रन्थ 'गीत गोविन्द' में बहुत से प्रबन्ध अथवा गीत लिखे हैं जो संस्कृत में हैं और जो राधा कृष्ण के प्रेम संबंधी हैं। किन्तु इन प्रबन्धों की स्वरलिपि नहीं दी हुई है अतः इनसे आज कोई विशेष लाभ नहीं हो पा रहा है। केवल राग या ताल का नाम देखकर हम उसके स्वरूप का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते। जयदेव का जन्म बंगाल में बोलपुर के पास केंदुला नामक स्थान में हुआ था।

(४) शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' संगीत का एक अत्यन्त

महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसका समय १३ वीं शताब्दी के मध्य का है। रत्नाकर को ही दक्षिण और उत्तर संगीत वाले, दोनों अपना शास्त्रीय आधार मानते हैं। शारंगदेव के बाबा, भास्कर काश्मीर से दक्षिण में आकर देवगिरी में बस गये थे। शारङ्गदेव देवगिरि (दौलताबाद) के यादव वंश के राजा के दरबार में थे। शारङ्गदेव का समय १२१० से १२४७ ई० के मध्य का माना जाता है। शारंग देव के पिता सोधला, यादव राजा भिल्लमा ११८७—११९२ ई०) और सिंहना (१२१०—१२१७ ई०) के दरबार में नौकर हुए थे।

शारङ्गदेव ने अपने रत्नाकर में अनेक पूर्वलिखित ग्रन्थों की सामग्री लेकर, तत्कालीन उत्तर और दक्षिण भारत के संगीत का समन्वय करने का प्रयत्न किया है। यद्यपि वह इस काय में सफल नहीं हुआ है, बल्कि अनेक नई समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। रत्नाकर को ठीक ठीक अभी तक कोई नहीं समझ सका है। उत्तर भारत के लोग रत्नाकर को अपने संगीत का आधार ग्रन्थ मानते हैं और दक्षिण के लोग अपने संगीत का। रत्नाकर के बाद के संगीत विद्वानों ने अधिकतर अपने ग्रन्थों में रत्नाकर का ही आधार ग्रहण किया है।

संगीत रत्नाकर में नारद वर्णित पुरुष, स्त्री राग आदि के सिद्धांत को मान्यता मिली है परन्तु उसमें अन्य अनेक सिद्धांत भी दिये गये हैं।

शारङ्गदेव ने भी नारद की भांति गांधार ग्राम का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और लिखा है कि उसके समय तक वह व्यवहार से अलग हो चुका था। भरत, दत्तिला और मतंग ने समवादी स्वरों में नौ अथवा तेरह श्रुतियों का अंतर माना था परन्तु शारङ्गदेव और उस बाद के लेखकों ने यह अंतर आठ अथवा बारह श्रुतियों का माना इसी प्रकार विवादी स्वरों का अंतर भी शारङ्गदेव और

वाद के लेखकों ने दो श्रुतियों को न मानकर एक श्रुति को माना।

शारङ्गदेव ने कुल बारह विकृत स्वर माने हैं और भरत की भांति ही अठारह जातियां, सात शुद्ध और ग्यारह विकृत मानी हैं। जाति के तेरह लक्षण लिखे हैं :—ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, सन्यास, मंद्र, विन्यास, तार, अल्पत्व, बहुत्व, षाड़वत्व और अंतर मार्ग वादी का अन्य स्वरों से सम्बन्ध)। अठारह जातियों का विस्तृत वर्णन करके फिर ग्राम रागों का वर्णन भी किया है। शारंग देव के अनुसार ग्राम राग जातियों से उत्पन्न हुए हैं और ग्राम रागों से ही अन्य राग विकसित हुए हैं। कुल तीस ग्राम राग उसने लिखे हैं और अन्य अनेक प्रकार के राग (उदाहरणार्थ, उपराग, पूर्व-प्रसिद्ध रागांग, भाषांग क्रियांग उपांग आदि राग) मिला कर शारंगदेव ने कुल २६४ (दो सौ चौसठ) रागों का वर्णन किया है। किन्तु जब तक शारङ्गदेव और भरत के भी स्वरों और श्रुतियों तथा उनके वास्तविक शुद्ध सप्तक का ठीक स्वरूप पता न चले, तब तक उन रागों का भी ठीक ज्ञान होना कठिन ही है। कुछ विद्वान शारंग देव का शुद्ध थाट मुखारी (आधुनिक कनकांगी) स्वीकार करते हैं, जो आधुनिक कर्नाटक शुद्ध स्वर सप्तक है।

(३ ब) उत्तर मध्यकाल (विकास काल)

(१३००—१८०० ई०)

सामान्य प्रवृत्तियां :—यह काल विकास काल इसलिए कहा गया है क्योंकि इसमें उत्तर भारतीय संगीत का नये वातावरण में (अर्थात यवन काल में फारस के संगीत के प्रभाव व मिश्रण से) पूर्ण रूप से विकास हुआ। १४ वीं और १५ वीं शताब्दियाँ उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत के निर्माण के लिये सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं।

शासक के रूप में भारतवर्ष का सम्बन्ध मुसलमानों से सर्व-
११ वीं शताब्दी में हुआ और १८ वीं शताब्दी के लगभग
तक मुसलमानों का राज्य रहा। मुसलमान बादशाहत का तथा
उसके द्वारा फारस के संगीत का प्रभाव भारतीय संगीत पर वास्तव
में १४ वीं शताब्दी के प्रारंभ के संगीत का प्रभाव भारतीय संगीत
पर वास्तव में १४ वीं शताब्दी के प्रारंभ से अथवा १३ वीं शताब्दी
के अंतिम वर्षों से पड़ना प्रारम्भ हुआ था और दो सौ, तीन सौ
वर्षों में यह प्रभाव काफी पड़ चुका था जिसके फल स्वरूप भारतीय
संगीत में अनेक नवीनतायें समा गईं, भारतीय संगीत के इसी
उत्तर मध्यकाल अथवा विकास काल के आरम्भ से दक्षिण भारतीय
संगीत और उत्तर भारतीय संगीत एक दूसरे से स्पष्ट रूप से पृथक
होने लगे। यह पहले कहा ही जा चुका है कि इस पृथकी करण का
श्री गणेश ६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में संगीत मकरंद के समय से
हुआ था और इस काल में आकर दोनों पद्धतियाँ पूर्ण रूप से
स्वतन्त्र हो गई और चूँकि फारस के संगीत का प्रभाव उत्तर भारत
पर ही अधिक पड़ा, इसलिए दक्षिण अथवा कर्नाटक संगीत में
अपेक्षाकृत बहुत कम परिवर्तन हुआ। मुसलमानों के आगमन से
प्राचीन संगीत परम्परा अवश्य नष्ट होने लगी किंतु इसे हम उत्तर
भारतीय संगीत की अवनति न कह कर उसका विकास ही कहेंगे
क्योंकि आज हम स्वयं मानते हैं कि कर्नाटक संगीत की अपेक्षा
उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में अधिक सरसता, व्यापकता और
विस्तारक्षेत्र के साथ ही साथ फारस का संगीत भारतीय संगीत से
अनेक अंशों में सैद्धांतिक और आत्मिक साम्य भी रखता था और
कदाचित इसलिए उसका हमारे संगीत के साथ समन्वय भी हो
सका।

इस काल में मुसलमानों बादशाहों के दरबारों में संगीतज्ञों को

अच्छा आश्रय मिला और इसमें क्रियात्मक संगीत की साधना हुई परंतु इन बादशाहों ने संगीत के शास्त्र के प्रति उपेक्षा का भाव रखा जिसका परिणाम यह हुआ कि शास्त्र और क्रिया साथ-साथ आगे न बढ़ सके। केवल स्वतन्त्र रूप से शास्त्र लिखने वाले अनेक लेखक हुये जो बदलते हुए संगीत पर प्रकाश डालते समय प्राचीनता की ओर भी बराबर खिंचे रह जाते थे और कदाचित इसीलिए किसीभी एक ग्रंथ से उनके समय के संगीत का पूर्ण स्वरूप स्वरूप स्पष्ट रूप से नहीं ज्ञात हो पाता है।

इस विकास काल में अमीर खुसरो ने अनेक नये राग, ताल, गीत और वाद्य चलाये। इस काल में प्रारंभ में तो ध्रुपद, धमार और उनके साथ पखावज का महत्व रहा किंतु धीरे-धीरे बाद में ख्याल गायन, ठुमरी गायन और इनके साथ तबला वादन का भी प्रचार बढ़ने लगा। अकबर के राजत्वकाल में (१५५६-१६०५) तान सेन आदि अनेक सुप्रसिद्ध महान गायक हुये, जिनके अनेक चमत्कार भी प्रसिद्ध हैं। यह भी उत्तर भारतीय संगीत का स्वर्णयुग कहा जाता है। आगे चलकर अंतिम मुगल बादशाह मोहम्मदशाह 'रंगीले' के समय मे उनके दरबारी गायक सदारंग और अदारंग ने सैकड़ों सुन्दर ख्याल बनाये और संगीत की उन्नति की। इस काल मे राग गायन पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो गया।

विकास काल के मुख्य सोपान :—

(१) अलाउद्दीन : — १३ वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में और १४ वीं शताब्दी के प्रारंभिक समय में दिल्ली का राज्य सुलतान अलाउद्दीन के हाथ मे था। उसके दरबार का समय अनुमान से १२६५ से १३१६ ई० तक माना जाता है और उसी के दरबार में प्रसिद्ध कवि और गायक अमीर खुसरो था। अलाउद्दीन स्वयं संगीत का बड़ा प्रेमी था। उसने १२६४ ई० मे दक्खिन पर धावा

। और १३१० ई० में उसके मुगल सरदार मलिक काफूर ने दक्षिण भारत पर आक्रमण करके देवगिरी (दौलताबाद) के यादव राजा को पराजित किया और उधर का पूरा कब्जा कर लिया था। इस समय अलाउद्दीन के दिल्ली दरबार में दक्षिण के कई प्रसिद्ध संगीत लेजाये गये। उस समय दक्षिण में उत्तर की अपेक्षा अधिक उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे, ऐसा अनुमान लगाया जाता है। गोपाल नायक प्रसिद्ध संगीत...यादव वंश के दरबारी में था और कदाचित वह भी शाही फौजों के साथ दिल्ली ले जाया गया था। कहा जाता है कि दिल्ली में गोपाल नायक और अमीर खुसरो की गायन में होड़ हुई। फारस और भारतीय संगीत का सम्मिश्रण करते हुए खुसरो ने अनेक नवीन आविष्कार किये जैसे :—गीतों के कुछ प्रकार—कव्वाली, तराना आदि वाद्य—सितार, तबला आदि, राग—सरपर्दा, जिल्फ, साजगिरी आदि ताल—झुमरा, आड़ाचारताल, सूलफाक आदि। कव्वाली से ही आगे चलकर छोटे ख्यालों का विकास हुआ।

(२) लोचन :—मुसलमानों के समय में जो सबसे प्रथम संगीत शास्त्र का ग्रन्थ मिलता है जिसमें तत्कालीन परिवर्तित संगीत पद्धति पर कुछ प्रकाश पड़ता है, वह है लोचन कवि की 'राग-तरंगिणी।' इसमें जयदेव (१२ वीं शताब्दी) और विद्यापति (१४ वीं शताब्दी बिहार के तिरहुत दरबार) का उल्लेख है। तरंगिणी का रचना काल अनुमान से १५ शताब्दी के प्रारम्भ में माना जाता है। लोचन की तरंगिणी का शुद्ध थाट आधुनिक काफी के सदृश था। उसने सभी जन्य रागों को कुल बारह जनक थाटों अथवा मेलों में विभाजित किया है यहाँ से ही भारतीय संगीत में राग-रागिनी अथवा मूर्छना राग वर्गीकरण के स्थान पर मेल-राग अथवा थाट-राग वर्गीकरण का प्रारंभ पता चलता है। इस काल से कुछ पूर्व ही केवल एक षड्ज ग्राम का प्रचार रह गया था।

(३) कलिनाथ, विजय नगर के राजा देवराज के दरबार एक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ और पंडित था। वह लक्ष्मीधर का पुत्र और उसका समय १४२५ ई० के लगभग था। कलिनाथ ने देवकृत संगीत रत्नाकर की एक विस्तृत टीका लिखी है।

(४) भक्ति आंदोलन :—१४८४ और १५३३ ई० के उत्तर भारत और बंगाल में चैतन्य महाप्रभु और अन्य भक्तों भक्ति का तीव्र आंदोलन चलाया गया जिसमें भजन संकीर्तन नगर कीर्तन आदि के रूप में संगीत चर्चा का प्रचार हुआ।

(५) रामामात्य :—यह दक्षिण का ग्रंथकार था जिसने .. ई० के लगभग कर्नाटक संगीत का प्रथम विस्तृत शास्त्र-ग्रन्थ, मेल कलानिधि' लिखा। इसमें दक्षिण के सभी रागों का विवरण दिया है।

(६) अकबर —अकबर का समय १५५६ ई० से १६०५ ई० तक था और इसी काल को उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत के इतिहास का स्वर्णयुग कहा जाता है। फारस संगीत का प्रभाव पड़ने से पूर्व भारतीय संगीत का एक स्वर्ण युग और माना जाता है, जो मुसलमानों के आगमन से पूर्व की शताब्दियों में था। अकबर के समय में संगीत की बहुत उन्नति हुई। वह स्वयं बड़ा संगीत प्रेमी था। उसके दरबार में कुल छत्तीस संगीतज्ञ थे (आइने-अकबरी के अनुसार) जिनमें मियाँ तानसेन प्रमुख थे। वृन्दावन के प्रसिद्ध महात्मा और संगीतज्ञ स्वामी हरिदास के तानसेन शिष्य थे। तानसेन का नाम इस्लाम धर्म अपनाने से पूर्व तन्ना मिश्र था। तानसेन के अनेक शिष्य हुए जिनके दो मुख्य वर्ग बन गये—एक रबाबियों का वर्ग जो तानसेन द्वारा आविष्कृत रबाब वाद्य बजाते थे और दूसरा बीनकारों का वर्ग जो बीन (वीणा) बजाते थे। बीनकारों के आधुनिक प्रतिनिधि रामपुर के वजीर खाँ थे और रबाबियों के प्रतिनिधि

म० खाँ थे। तानसेन के घराने के गवैये नजैये सेनिये कहलाते हैं और सेनिये घराने के गायक ध्रुपद के विशेषज्ञ कहे जाते हैं। अकबर के दरबार के दरबार के एक अन्य प्रसिद्ध गायक थे — नायक बैजू, गोपाल नौबत खाँ, तानतरंग खाँ, मसीतखाँ इत्यादि। अनेक राग मियाँ तानसेन के बनाये कहे जाते हैं जैसे, दरबारी कान्हड़ा, मियाँ मल्हार, मियाँ की सारंग आदि।

अकबर के राज्यकाल में ही ग्वालियर में राजा मानसिंह तोमर ने ग्वालियर का संगीत घराना चालू किया। इन्हें ही ध्रुपद का आविष्कारक कहते हैं। इनके दरबार में एक नायक बरश हो गये हैं जिनकी रचनाएँ तानसेन के बाद महत्वपूर्ण मानी गई हैं। अकबर के समय में सवत्र ध्रुपद गायन ही प्रचलित था अर्थात् आज से लगभग ५०० वर्ष पूर्व ध्रुपद गायन का प्रचलन हुआ था। अकबर के समय में ही ख्याल गायन का भी प्रचार आरंभ होने लगा था। जौनपुर के सुलतान हुसेन शर्की ने विलंबित अथवा बड़े ख्यालों का आविष्कार किया और खुसरो द्वारा जिस कव्वाली गीत का प्रचलन हुआ था उसी से क्रमश द्रुत लय के ख्याल अर्थात छोटे ख्याल भी चल पड़े।

अकबर के समय में ही कवि तुलसीदास द्वारा गीतों तथा रामायण महाकाव्य के गायन द्वारा और भक्त सूरदास तथा मीरा बाई के भक्ति सम्बन्धी पदों के गायन द्वारा जनता में भी संगीत का अधिक प्रचार हुआ।

अकबर के ही समय में खादेश की राजधानी बुरहानपुर (दक्षिण) के राजा बुरहान खाँ फारूखी के दरबार में एक प्रसिद्ध पंडित या संगीतज्ञ था जिनका नाम पुँडरीक विट्ठल कर्नाटकी था। जब अकबर ने १५६६ ई० में खादेश को अपने हाथ में कर लिया, तब कदाचित् पुँडरीक दिल्ली भी गया था। राजा बुरहान खाँ के

अनुरोध से पुँडरीक ने उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत में जो गड़बड़ी पैदा हो गई थी, उसे दूर करके संगीत शास्त्र को नए सिरे से व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया। पुंडरीक विट्ठल के चार ग्रन्थ १५६६ के आस-पास लिखे हुए मिलते हैं :—सद्राग चंद्रोदय, रागमाला, राग मंजरी और नर्तन निर्णय। सद्रागचंद्रोदय में शुद्ध थाट कर्नाटकी मुखारी है और उसमें वर्णित राग प्रायः दक्षिण के ही हैं। परन्तु रागमाला में उत्तर हिन्दुस्तानी पद्धति के अनुकूल राग रागिनी पद्धति का वर्णन है और अनेक उत्तर के राग नाम दिये हैं जिससे स्पष्ट है कि पुंडरीक उत्तर भारत के सम्पर्क में भी अवश्य आया था।

(७) जहाँगीर :—जहाँगीर का समय १६०५ ई० से १६२७ ई० तक था। तुलसीदास की मृत्यु इसी काल में हुई। जहाँगीर के दरबार में चिलाम खाँ, छतर खाँ, खुर्रमदाद, मक्खू और हमजान आदि संगीतज्ञ थे। जहाँगीर के राज्यकाल में ही १६१० ई० में दक्षिण संगीत पर एक सुन्दर पुस्तक 'राग विबोध" लिखी गई जिसका लेखक पंडित सोमनाथ था जो दक्षिण भारत के राजमुन्द्री स्थान का रहने वाला एक तेलगू ब्राह्मण था। सोमनाथ ने अनेक वीणाओं का वर्णन किया है और कहीं कहीं उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत के नामों (थाट, तीव्र आदि स्वर इत्यादि) का भी प्रयोग किया है जिससे पता चलता है कि उसने उत्तर सगीत का भी कुछ परिचय लिया था परन्तु यह नहीं के बराबर ही था क्योंकि उसके ग्रन्थ से पता चलती है कि यह उत्तर संगीत को ठीक से समझ नहीं पाया था। उत्तर और दक्षिण के सगीत सिद्धांतों के समन्वय के प्रयत्न का आभास सोमनाथ के राग विबोध में भी मिलता है।

जहाँगीर के समय में उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत का एक ग्रन्थ "संगीत दर्पण' पं० दामोदर मिश्र द्वारा लिखा गया। संगीत दर्पण

की रचना काल १६२५ ई० है। संगीत दर्पण को समझना भी लगभग उतना ही कठिन है जितना रत्नाकर को समझना। इसमें रागों के चित्रों का भी वर्णन है।

शाहजहां—शाहजहां का राज्यकाल १६२७ ई० से १६५८ ई० तक रहा। शाहजहाँ के दरबार में भी कुछ प्रसिद्ध गायक थे जिनमें से तीन मुख्य थे :—एक तो जगन्नाथ जिसे "कविराज" की उपाधि मिली थी, दूसरा लालखाँ जिसे 'गुण समुद्र" की उपाधि दी गई थी और तीसरा दिरंग खाँ। जगन्नाथ और दिरंग खाँ चाँदी से तौले गये थे और प्रत्येक को साढ़े चार हजार रुपये दिये गये थे। लाल खां तानसेन के पुत्र बिलास खाँ का दामाद था। शाहजहाँ के समय मे ही श्रीकृष्ण के पुत्र पंडित अहोबल ने उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'संगीत पारिजात' सन् १६५० ई० के लगभग जिसमे प्रथम वार वीणा के तार की लंबाइयों द्वारा बारहों स्वरों के स्थान दिये गये हैं यद्यपि अहोबल ने, २६ स्वर नाम दिये हैं पर वह व्यवहार मे केवल १२ स्वर बतलाता है। अहोबल का शुद्ध थाट भी लोचन की भाँति आधुनिक काफी थाट के सदृश था। उत्तर-मध्यकाल मे काफी थाट ही शुद्ध सतक बना रहा। पारिजात का फारसी मे अनुवाद १७२४ ई० में श्री वासुदेव के पुत्र दीनानाथ ने किया। 'संगीत-कार्यालय' हाथरस ने संगीत पारिजात का हिंदी मे भी अनुवाद कराया है जो एक अत्यन्त सराहनीय कार्य है। लगभग पारिजात के समय के निकट ही हृदय नारायण देव ने दो ग्रन्थ हृदय कौतुक और हृदय प्रकाश लिखे। हृदय-प्रकाश मे भी अहोबल की भाँति ही बारह स्वरों के स्थान वीणा के तार पर समझाये गये हैं।

व्यंकट मखी :—१६६० ई० में दक्षिण के संगीत विद्वान पंडित

व्यंकटमखी ने 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' नामक ग्रन्थ कर्नाटक संगीत पर लिखा, जिसमें उसने गणितानुसार एक सप्तक से कुल ७२ थाटों (अर्थात मेल कर्ताओं) और एक थाट से कुल ४८४ रागों की उत्पत्ति सिद्ध की है। व्यंकटमखी के पिता गोविन्द दीक्षित थे जो जो अपनी परम्परा शारङ्गदेव तक ले जाते थे। व्यंकटमखी ने भी शुद्ध बारह स्वरों का ही प्रयोग स्वीकार किया है।

(१०) औरंगजेब :—औरंगजेब का समय १६५८ ई० से १७०७ ई० तक। औरंगजेब कट्टर मुसलमान था और संगीत का शत्रु था। उसने हुक्म तक दिया था कि सब साज दफना दिये जायें। फिर भी राजाश्रय से दूर स्वतन्त्र रूप से कुछ स्थानों में संगीत साधना चलती रही।

इसी समय के लगभग भावभट्ट ने तीन ग्रन्थ लिखे :—अनूप संगीत रत्नाकर, अनूप संगीत विलास और अनूपांकुश। उसने शारंग देव को अनेक स्थानों पर उद्धृत किया। यद्यपि वह स्वयं शारंगदेव के रागों को समझ नहीं पाया है। भावभट्ट दक्षिण पद्धति का लेखक था और उसका शुद्ध थाट मुखारी है। अनूप संगीत रत्नाकर में उसने सब रागों को कुल २० मेल अथवा थाटों में बाँटा है। भाव भट्ट के पिता जर्नादन भट्ट थे जो शाहजहाँ के दरबार में थे। उनका वंश मालवा के आभीर प्रांत का रहने वाला था, भावभट्ट स्वयं राजा अनूपसिंह (बीकानेर) के दरबार में था।

(११) मोहम्मदशाह :—१८ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में संगीत साधना चालू रही यद्यपि पूर्व की तीव्रता के साथ नहीं। इस उत्तरार्ध में मुसलमानी गिरने लगी और अंग्रेजों का राज्य धीरे-धीरे स्थापित होना प्रारम्भ हुआ।

मोहम्मदशाह 'रंगीले' (१७१६ ई०) अंतिम बादशाह था जिसके दरबार दो अत्यंत प्रसिद्ध गायक सदारंग और अदारंग थे,

जिन्होंने हज़ारों ख्याल रचे और अपने शिष्यों को सिखलाये। उनके ख्याल आज भी प्रचलित हैं।

इसी समय में शोरी मियाँ ने टप्पा गीत का प्रचार किया।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संगीत साधना चलती रही परन्तु पूर्व की तीव्रता के साथ नहीं। मुसलमानों की शक्ति गिरने लगी और अंग्रेजों का राज्य धीरे-धीरे स्थापित होने लगा। राजाश्रय छिनने लगा। केवल स्वतन्त्र रूप से कुछ स्थानों और रियासतों में संगीतज्ञ साधना में रत रहे। अठारहवीं शताब्दी मे ही श्रीनिवास ने 'रागतत्व विबोध' नामक ग्रन्थ लिखा जो उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत का ग्रन्थ है और जिसमे अहोबल के पारिजात की भांति १२ स्वर-स्थान तथा काफी शुद्ध थाट दिया गया है। इसी काल में त्रिवट, गज़ल, तराना, टप्पा आदि गीत प्रकारों का प्रचार चला। इसी काल मे दक्षिण संगीत पर तञ्जौर के मराठा राजा तुलजेन्द्र भोंसले (१७६३-८७) की दो पुस्तकें रची गईं :—संगीत सारामृतम् और राग लक्षणम्।

(४अ) प्रारंभिक आधुनिक काल (साधना काल)

१८०० ई० — १६०० ई०)

सामान्य परिस्थिति :—अंग्रेज भारतीय संगीत को बहुत बुरा समझते थे। अत: इस काल मे नायक वादकों को कोई राजाश्रय तो मिला नहीं और न कोई प्रचार का ही कार्य हो सका। हाँ, केवल कुछ खास रियासतों मे विभिन्न खानदानों के संगीतज्ञ अपना रियाज करते और शिष्यों को सिखलाते रहे। इस प्रकार संगीत की ऐकांतिक साधना ही अधिक चली जिसके कारण इस काल को साधना काल कहा गया है। नई शिक्षा के सभ्य समाज का दृष्टिकोण भी कुछ अभारतीय और कला के प्रति उपेक्षणीय सा

बन गया। संगीत कला बुरे हाथों में भी जा पड़ी जिनके फलस्वरूप सभ्य समाज वाले उसे और भी घृणा की दृष्टि से देखने लगे। कुछ अंग्रेजों ने अवश्य इस का अध्ययन किया जैसे कैप्टेन डे, सर विलियम जोन्स और कैप्टेन विलर्ड आदि। इस काल के मुख्य ग्रन्थ ये हैं :—

सामग्री :—(१) इस काल की विशेषता यह है कि इसी काल में सर्वप्रथम बिलावल को शुद्ध थाट होने के लिखित प्रमाण मिलते हैं। १८१३ ई० में सर्व प्रथम पटना के एक रईस मुहम्मद रजा ने एक पुस्तक 'नगमाते-आसफी' लिखी। इसमें बिलावल को शुद्ध थाट माना है और पूर्व प्रचलित अनेक राग-रागिनी पद्धति के मतों को तत्कालीन संगीत के प्रतिकूल सिद्ध करके रजा साहब ने अपना एक मत बनाया जिसमें नए ढंग से छ: राग और छत्तीस रागिनियों का विभाजन किया। (२) जयपुर के राजा प्रतापसिंह के (१७७६ ई०—१८०४ ई०) ने उस समय के अनेक संगीत पंडितों की सहायता से एक आधार संगीत शास्त्र ग्रन्थ लिखने का प्रयत्न किया। वह ग्रन्थ 'संगीत सार' है। यह ग्रन्थ उच्चकोटि का नहीं है यद्यपि उस समय के विद्वानों के विचारों पर प्रकाश डालता है, शुद्ध थाट इसका भी बिलावल है। (३) श्री कृष्णानंद व्यास ने एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'संगीत राग कल्पद्रुम' लिखा जिसका प्रकाशन कलकत्ता से १८४२ ई० में हुआ। इसमें उस समय तक के हजारों प्रचलित हिंदी के ख्याल, ध्रुपद आदि गानों के शब्द दिये हैं यद्यपि स्वरलिपि न होने के कारण, उनका स्वरूप आज हम नहीं जान सकते। (४) इस समय दक्षिण कर्नाटक संगीत का एक बड़ा केन्द्र तंजोर बन गया था और अनेक सुप्रसिद्ध संगीत विद्वान, त्याग राज, श्यामशास्त्री, मुत्तु दिक्षित आदि हुए। त्यागराज का समय १८०० से १८५० ई० तक थ

(५) १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बंगाल के सर सौरेन्द्रमोहन टैगोर ने 'यूनिवर्सल हिस्ट्री आफ म्यूजिक' पुस्तक लिखा जिसमें राग-रागिनी पद्धति स्वीकृत है। बंगाल के अन्य विद्वानों ने भी इसी पद्धत को माना है।

(४ब) समसामयिक आधुनिक काल (प्रचारकाल)

(१६००ई० —१६५० ई०)

सामान्य परिचय :—१६०० ई० से पूर्व उत्तर हिंदुस्तानी संग त की दशा कुछ शोचनीय सी हो रही थी क्योंकि अंग्रेजी राज्य की उपेक्षा थी और सभ्य समाज से दूर बुरे हाथों में भी संगीत जा पड़ा था। किन्तु जयपुर, ग्वालियर बड़ोदा, रामपुर आदि रियासतों तथा लखनऊ, दिल्ली आदि कुछ स्थानों में गायक वादकों के कुछ खानदानों में संगीत साधना ऐकांतिक रूप से जारी थी। खान संगीतज्ञ अपने बेटा या चेला को सिखलाते थे किंतु शिक्षा का कोई सार्वजनिक अथवा वैज्ञानिक ढङ्ग न होने से अच्छे संगीतज्ञ बहुत कम और अधिक समय मे बन पाते थे। इस दशा में कुछ परिवर्तन १६०० ई० से पूव आरम्भ हुआ था किंतु पूर्ण सुधार का प्रयत्न इसी काल में (१६००—१६५० ई०) आकर हुआ। इसी से इसे प्रचार काल कहा है। संगीत का उद्धार, विकास तथा प्रचार करने का श्रेय मुख्यत. दो महान संगीतज्ञों को मिलता है, एक तो स्वर्गीय पण्डित विष्णुदिगम्बर पलुस्कर और दूसरे स्वर्गीय पंडित विष्णु नारायण भातखंडे। प्रथम द्वारा क्रियात्मक संगीत का प्रचार और द्वितीय द्वारा संगीत शास्त्र का उद्धार होकर संगीत का चतुर्दिक विकास हो सका और आज लगभग सभी नगरों के स्कूल, कालिजों मे तथा अनेक विश्वविद्यालयों में भी संग.त एक पाठ्य विषय बना

दिया गया है। अनेक सङ्गीत सम्मेलनियों द्वारा जन साधारण में भी सङ्गीत के प्रति विशेष अभिरुचि उत्पन्न की जा रही है। रेडियो और फिल्म द्वारा भी सङ्गीत का खूब प्रचार हुआ है। इस काल की एक विशेषता यह भी है कि इसमें शास्त्रीय सङ्गीत की भावना के साथ-साथ सङ्गीत के अन्य प्रयोगों का भी विकास हुआ। उदाहरणार्थ बंगाल के विश्वप्रसिद्ध कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने भाव-सङ्गीत का एक चमत्कृत विकास किया। उन्होंने सैकड़ों गीत बनाये जिनमें विभिन्न राग-रागिनियों के आवश्यक अंश लेकर अथवा अन्य नवीन स्वरसमुदायों की सहायता से स्वरों तथा शब्दों का पूर्ण साम्य उपस्थित किया। उनके रवीन्द्र सङ्गीत ने भारतीय सङ्गीत के प्रयोगात्मक एवं साहित्यिक पक्ष को उज्ज्वल किया है। पाश्चात्य सङ्गीत का प्रभाव यद्यपि हमारे शास्त्रीय सङ्गीत पर नहीं पड़ सका है परन्तु उसका प्रभाव हमारे फिल्मी पृष्ठ (बैक ग्राउंड म्यूजिक) पर काफी पड़ रहा है सम्भव है कभी हमारे वाद्यों के आरकेस्ट्रा तथा फिल्मी पृष्ठ सङ्गीत में उस पाश्चात्य प्रभाव का भारतीयकरण किया जा सके और इस प्रकार हमारा आरकेस्ट्रा, जो आज तक पिछड़ा हुआ रहा है, विकसित हो सके।

उल्लेखनीय तथ्य :—(१) स्व० पंडित विष्णुदिगम्बर पलुस्कर का जन्म कुरुन्दवाड़ रियासत (बेलगांव) में सन् १८७२ ई० की श्रावण पूर्णिमा के दिन हुआ था। उनके पिता श्री दिगम्बर गोपाल और माता श्रीमती गङ्गादेवी जी थीं। उन्होंने सङ्गीत की शिक्षा गायनाचार्य प० बालकृष्ण बुआ से पाई। इनकी धर्मपत्नी रामाबाई थीं और बारह बच्चों में न केवल एक बच्चे जो आज तक प्रसिद्ध गायक माने जाते हैं और जिनका नाम प्रो० डी० वी० पलुस्कर है। सङ्गीतोद्धार के लिए भ्रमण करने पण्डित जी १८९६ ई० में निकल पड़े। देश के अनेक स्थानों पर भ्रमण करके उन्होंने

अपने सुमधुर या आकर्षक सङ्गीत तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व द्वारा सभ्यसमाज के हृदय में सङ्गी प्रेम उत्पन्न किया। सबसे पहले उन्होंने लाहोर में ५ मई सन् १६०१ ई० में गान्धर्व महा विद्यालय की स्थापना की। आगे चलकर बम्बई का विद्यालय ही मुख्य केन्द्र बन गया। पण्डित जी का पर्यटन जारी रहा। उन्होंने जिन जिन स्थानों पर जाकर जलसे किये उनमें से कुछ नाम ये हैं—सितारा, बड़ौदा, काठियावाड, गिरनार, ग्वालियर, मथुरा, दिल्ली, जालंधर अमृतसर, लाहौर, काश्मीर, रावलपिंडी, भरतपुर, जायपुर, मांट-गोमरी, जम्मू गया, नासिक, कराची, हैदराबाद (सिंध) अहमदा बाद, गोहाटी, कलकत्ता, नवद्वीप, पूना, जगन्नाथपुरी, अयोध्या, फैजाबाद, प्रयाग, चित्रकूट, झाँसी, मद्रास, बर्मा मांडले, सिलोन, महाबलेश्वर, कानपुर, नेपाल, काशी, मिरजापुर, पटना, भरोच पठानकोट, काँगड़ा पहाड आदि। उन्होंने अनेक बडी सगीत कान्फ्रेन्सें सगीतज्ञों के सम्मेलन और अध्यापकों के सम्मेलन किए। पण्डित जी १६२० ई० से कुछ विरक्त होने लगे और रामभक्ति का स्रोत उनके हृदय में उमडने लगा। १६२२ ई० में उन्होंने नासिक में रामनाम आधार आश्रम खोला। तबसे बराबर रामनाम कीर्तन और रामकथा का भी प्रचार सगीत के साथ-साथ करने लगे। इस प्रकार संगीत को एक पवित्र वातावरण में स्थापित करके और देश भर ट सगीत के विषय में एक तीव्र जागृत उत्पन्न करके वे २१ अगस्त सन् १६३१ ई० में मिरज में परलोक सिधारे। उनके शिष्य लगभग १०० निकले जिनमें से लगभग ५० तो स्वयं उनसे शिक्षा पाये थे। इनमें से भी लगभग १० ऐसे शिष्य निकले जो आज अखिल भारतीय सगीतज्ञ कहे जा सकते हैं। उनके सभी शिष्य आज विभिन्न नगरों में अध्यापन द्वारा सगीत का प्रचार कर रहे हैं। पडित विष्णु दिगबर जी ने कुल लगभग ५० छोटी बडी पुस्तकें

नोटेशन सहित गीतों की छपवाई। इनमें मुख्य हैं (१) संगीत बाल बोध भाग १-५ (२) संगीत बालप्रकाश, भाग १-३ (३) स्वल्पालाप गायन, भाग १-४ (४ महिला संगीत भाग १, २ (३) भारतीय संगीत लेखन पद्धति (६) बालोदय संगीत (७) व्यायाम संगीत १, २ (८) संगीत तत्त्वदर्शक (९) अंकित अलंकार (१०) राग प्रवेश भाग १ से १६ (११) संगीत. भाग १,५ (१ विहाग, २ कल्याण, ३ भूपाली, ४ भैरव, ५ माल कंस)। (१२) मृदङ्ग व तबले की पुस्तक (१३) सितार की पुस्तकें १, २ (१४) नारदीय शिक्षा सटीक (१५) भजनामृत लहरी भाग १.५ (१६) टप्पा गायन (१७) होरी (१८) भक्त प्रेमलहरी इत्यादि।

(२) स्वर्गीय पंडित विष्णु नारायण भातखंडे—जी का जन्म बम्बई प्रांत के बालकेश्वर नामक स्थान में उच्च ब्राह्मण कुल में १० अगस्त सन् १८६० ई० के कृष्ण जन्माष्टमी के दिन हुआ। इनके माता पिता संगीत प्रेमी थे। इन्होंने १८८३ ई० में बी० ए० और १८९० ई० एल० एल० बी० पास किया और वकालत करना पहले कराची में प्रारंभ किया, फिर बम्बई की छोटी अदालतों में वकालत करने लगे। पंडित जी एक होनहार गायक और अच्छे सितार जानकार थे। वैसे उन्होंने बाँसुरी का भी सुन्दर अभ्यास किया था। इनके मुख्य गुरु जयपुर के मोहम्मद अली खां थे जिनसे सैकड़ों गाने सीखे। इनके अतिरिक्त गायन के अन्य गुरु रामपुर के नवाब कलबेअली खाँ और ग्वालियर के पंडित एकनाथ थे। सबसे पहले पंडित जी ने बाल्यकाल में ही सितार की शिक्षा गुरू सेठ वल्लभदास से प्राप्त की थी और उस समय इनके गाने के गुरू राव जी बुवा बेल बाघकर थे। पंडितजी ने संगीत में पूर्ण अध्ययन करके खोज करने का विचार किया और उनकी संगीत सम्बन्धी यात्रा १९०४ ई० में आरम्भ हुई। वे पहले दक्षिण में घूमे, फिर

उत्तर भारत में जहाँ भी वे गये, वहाँ के पुस्तकालयों में संगीत सम्बन्धी शास्त्र अथवा अन्य सामग्रियों को देखते चले और विभिन्न संगीतज्ञों तथा विद्वानों से विचार-विनिमय तथा बहस की। कुछ मुख्य स्थान जहाँ उनका भ्रमण हुआ ये हैं :—हैदराबाद, सूरत, विजयानगरम्, जामनगर जूनागढ़, भावनगर, अहमदाबाद, मद्रास, तंजौर, ट्रीवेन्ड्रम, त्रिचनापली, मैसूर, जगन्नाथपुरी, नागपुर, कलकत्ता इलाहाबाद, बनारस, लखनऊ, गया, मथुरा, आगरा, दिल्ली, जयपुर बीकानेर, आदि। पंडित भातखंडे जी ने एक सरल वा उपयोगी स्वरलिपि की पद्धति वैज्ञानिक ढंग से निर्मित की और अनेक पुस्तकें स्वरलिपि सहित चीजों की निकालीं। उन्होंने बड़े परिश्रम से विभिन्न गायकों से चीजें सीखीं व उनका नोटेशन करके पुस्तकें छपवाईं जिनसे एक अकथनीय लाभ संगीत जगत को हुआ है। साथ ही सभी उपलब्ध संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के संगीत-ग्रन्थों का अध्ययन करके और आधुनिक संगीत स्वरूप के अनुकूल शास्त्र निर्मित करके उन्होंने अनेक संगीत शास्त्र ग्रंथ भी लिखे। उनके मुख्य ग्रंथ इस प्रकार हैं :—(१) स्वरमालिका (गुजराती) (२) 'गीत मालिका'—पत्रिका, २२ अंक (३) हिंदुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तकमालिका भाग १ - ६ (जिनमें अनेक प्रचलित अप्रचलित रागों की चीजें नोटेशन सहित दी हैं) (४) हिंदुस्तानी सङ्गीत पद्धति भाग १—४ (जिनमें मराठी में सम्पूर्ण संगीत शास्त्र दिया है) (५) अभिनय राग मञ्जरी (संस्कृत) (६) लक्ष्य संगीत (संस्कृत में शास्त्र का आधार ग्रंथ) पंडित जी ने दक्षिण की जन्य-जनक पद्धति तथा उत्तर भारत की मध्यकालीन मेल-राग पद्धति का अनुसरण करते हुए सभी आधुनिक रागों का वर्गीकरण कुल दस थाटों में बड़े अच्छे ढंग से किया।

पण्डित भातखंडे जी ने सर्वप्रथम संगीत की बड़ी कान्फ्रेंस

१६१६ ई० में बड़ौदा में करवाई जिसका उद्घाटन बड़ौदा महाराज ने किया। यह प्रथम आल-इंडिया-कानफरेन्स थी जिसमें एक 'आल इंडिया म्यूजिक एकेडमी' १६१६ ई० में खुली किंतु आगे चल कर इसका कार्य बन्द हो गया। तब से अनेक कानफरेन्सें होने लगीं। पंडित जी ने बड़ौदा के बाद, दिल्ली, बनारस और लखनऊ में म्यूजिक कानफरेन्सें कीं। इन्होंने ही तीन संगीत विद्यालय स्थापित करवाये। एक लखनऊ में मैरिस म्यूजिक कालिज, दूसरा ग्वालियर में माधव संगीत विद्यालय और तीसरा बड़ौदा में। पंडित जी ने इस प्रकार अधिक परिश्रम करके संगीत जगत की सेवा की और अन्त में १६ सितम्बर १६३६ में इनका स्वर्गवास हो गया।

(३) आज लगभग सभी प्रांतों में हाई स्कूल तथा इंटरमीडिएट परीक्षाओं और अन्य परीक्षाओं में भी संगीत एक विषय बना दिया गया है और लगभग सभी स्कूलों, कालिजों में संगीत शिक्षा दी जा रही है। कुछ विश्वविद्यालयों में भी बी० ए० में एक विषय संगीत बना दिया गया है जैसे प्रयाग, बनारस, आगरा, पटना पंजाब, काश्मीर, नागपुर आदि। इसके अतिरिक्त संगीत के सैकड़ों विद्यालय भी देश भर में चल रहे हैं जिनमें से मुख्य दो-चार ये हैं :— (१) गांधर्व महाविद्यालय, पूना (२) स्कूल आफ इन्डियन म्यूजिक, बड़ौदा, (५) मैरिस म्यूजिक कालेज, लखनऊ (६) माधव संगीत विद्यालय, ग्वालियर (७) शंकर संगीत विद्यालय, ग्वालियर (८) प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद (६ संगीत समाज, कानपुर और १०) म्यूजिक कालेज, कलकत्ता आदि। आज जो मुख्य संगीत की डिग्रियाँ विभिन्न शिक्षा संस्थाओं द्वारा मान्य हैं वे इस प्रकार हैं :—(१) बम्बई पूना की 'संगीत प्रवीन' तथा संगीत विशारद' (२) लखनऊ की 'संगीत विशारद' (३) ग्वालियर का 'संगीत रत्न' और 'म्यूजिक डिप्लोमा' (४) इलाहाबाद की संगीत

भाकर' और प्रयाग विश्वविद्यालय का सीनियर डिप्लोमा-इन-म्यूजिक'।

(४) बहुत वर्षों से अनेक शहरों में अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन (कानफरेन्स) होते आ रहे हैं जिनमें देश प्रसिद्ध संगीतज्ञों के प्रदर्शन द्वारा जनता में संगीत का प्रचार बढ़ता है। कानफरेन्स करने वाली मुख्य संस्थायें जो नियमित रूप से प्रति-वर्ष अथवा एक वर्ष छोड़कर कानफरेन्स करती हैं, वे ये हैं प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग संगीत समिति और कलकत्ता संगीत परिषद्। गोरखपुर पटना, मेरठ लखनऊ, ग्वालियर, बड़ौदा आदि में भी अनेक बार ये सम्मेलन हो चुके हैं।

(५) इधर कुछ वर्षों में संगीत विषयक अनेक पुस्तकें भी छपी हैं। उनमें से कुछ के नाम यहाँ दिये जाते हैं जिनको पढ़कर आधुनिक संगीत तथा संगीत के इतिहास का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है —

(१) 'मुआरफ़ुल नग़मात'—लेखक ठाकुर नवाब अली खाँ, लखनऊ भाग १—३ (२) 'संगीत कौमुदी' भाग १—४, लेखक विक्रमादित्य सिंह निगम लखनऊ (३) संगीत शास्त्र दर्शन भाग १, गांधर्व महाविद्यालय मंडल, प्रयाग (४) संगीत शास्त्र भाग २, ३, ४, मैरिस कालिज लखनऊ। (५) 'राग विज्ञान' भाग १—५, लेखक प्रो० वी० एन० पटवर्द्धन पूना। (६) 'अभिनव संगीत' भाग १-४ लेखक प्रो० शंकर गणेश व्यास (७) पूना के फीरोज फ्राम जी द्वारा लिखित 'सोरान' नियन अनेक पुस्तक हैं इनके अतिरिक्त कुछ अंग्रेजी की पुस्तकें हैं —(१) 'थ्योरी आफ इन्डियन म्यूजिक'— बिशन स्वरूप (२ 'हिंदुस्तान म्यूजिक' जी० एच० रानाडे ३) 'दि ओरिजिन आफ राग'—श्रीपद बन्दोपाध्याय ...

मरवे आफ म्यूजिक'—श्री भातखंडे (४) ए कम्पैरेटिव स्टडी आ' म्यूजिक सिस्टेमज्' (१५ वीं से १८ वीं शताब्दियों के)—श्री भा खडे। (६) 'म्यूजिक ऑफ इन्डिया—एच० ए० पोपले (७) म्यूजि आफ हिन्दुस्तान—फाक्सस्ट्रें गवेज (८) इण्डियन म्यूजिक-क्लेमेंटस_।